सत्य-साम्य-सुख-गीताञ्जली

धारा...41, ग्रंथांक (246)...

(गद्य-पद्यमय)

-समता साधक आचार्य कनकनन्दी

पुण्य-स्मरण

1. लघु ग्राम नन्दौड़ के एक दि. जैन समाज के एक परिवार में आडम्बर रहित समता-शान्ति एवं प्रभावनापूर्वक चातुर्मास के उपलक्ष्य में...
2. आ. कनकनन्दी के प्रथम मार्ग प्रदर्शक गुरु आचार्य विमलसागर जी गुरुदेव जन्म शताब्दी समारोह

अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

1. श्री प्रवीण कुमार जी श्रीमती नन्दाबाई शाह परिवार नन्दौड़
2. श्री हीरालाल जी माणकचन्द जी कोठारी सेक्टर-14, उदयपुर
3. श्रीमती शिवाली ध.प. श्री ब्रजेश कुमार जी जैन बैंगलोर
4. श्रीमती प्रेमलता ध.प. श्री भरत कुमार जी शाह (मांडव) सेक्टर-11, उदयपुर

ग्रन्थांक-246 प्रतियाँ-500

संस्करण-2016 मूल्य-51/- रु.

सम्पर्क सूत्र व प्राप्ति स्थान

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त

(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान

द्वारा-श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा

चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,

उदयपुर (राज.)-313001/मो. 097832-16418

(2) डॉ. नारायणलाल कछारा

सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान

55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001

फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622

E-mail:nlkachhara@yahoo.com

मैं (आ. कनकनन्दी) हूँ विश्व गुरु सर्वज्ञ देव के महानतम विश्वविद्यालय का छोटा-सा विद्यार्थी!

-विद्यार्थी आ. कनकनन्दी

(चाल : कहाँ गये चक्री....., तुम दिल की धड़कन.....)

सर्वज्ञ गुरु के स्कूल का...मैं हूँ...छोटा-सा विद्यार्थी...
गणधर होते जिस स्कूल के...उच्चतम विद्यार्थी...(स्थायी)...

इस स्कूल में होता है ज्ञान...आत्मा (व) परमात्मा का...
अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक के...परम सत्य का...
आत्मा को परमात्मा बनाने की...शिक्षा होती प्रमुख...
अन्य समस्त ज्ञान-विज्ञान भी...होता आनुषंगिक...(1)...

जीव विज्ञान व भौतिक ज्ञान...मनोविज्ञान व गणित...
न्याय-राजनीति व अर्थशास्त्र...भूगोल-खगोलशास्त्र...
भाषा-व्याकरण आयुर्विज्ञान...कर्म सिद्धांत अनेकांत...
आकाश काल व विश्व-व्यवस्था का...मिले है ज्ञान अनंत...(2)...

विश्व की समस्त भाषा में या...सात सौ अठारह भाषा में...
हमारे गुरु हमें पढ़ाते हैं...सम्पूर्ण अंगों/(शरीर) से...
इसी स्कूल में पढ़ते है मानव...पशु-पक्षी-देव...
राजा रंक व चक्री उपाध्याय...साधु गणधर देव...(3)...

हर ज्ञान हमें मिलता निःशुल्क...बिना भेद-भाव से...
स्व-स्व योग्यता के अनुसार...ग्रहण करते श्रद्धा-प्रज्ञा से...
आत्मविश्वास से ही प्रारम्भ होती...प्राथमिक श्रेणी/(कक्षा)...
आत्म संयम व आत्म विशुद्धि से...बढ़ती है यह श्रेणी/(कक्षा)...(4)...

श्रावक-साधु-उपाध्याय व...आचार्य भी पढ़ते...
सम्यक् ज्ञान व आचरण द्वारा...डिग्रियों को पाते...
अवधि ज्ञान-मनःपर्यय ज्ञान...व ऋद्धियाँ पाते...
सर्वज्ञ बनने पर ही स्नातक...डिग्री को भी पाते...(5)...

मुझे अभी प्राप्त करना है...अवधि-मनःपर्यय ज्ञान...
सर्वज्ञ बनने तक मैं तो...पढ़ूँगा ही अविराम...

शुद्ध-बुद्ध ज्ञानानन्द बनकर...बनूँगा मैं गुरु...
इसी हेतु ही 'कनकनन्दी' का...स्वाध्याय/(पढ़ाई) सतत शुरू...(6)...

नन्दौड़, दिनांक 17.08.2015, रात्रि 1.15

स्वाभिमान-आत्मविश्वास की कविता

छात्र हूँ छोटा किन्तु लक्ष्य है मोटा

(मैं (आ. कनकनन्दी) पढ़ाई क्यों कर रहा हूँ?)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : नन्हा-मुन्ना राही हूँ.....)

छोटा-भोला छात्र हूँ...सरस्वती पुत्र हूँ...
'मैं'/(अहं/स्व) को पढ़ना चाहता हूँ...पास होना चाहता हूँ...
श्रद्धा के साथ हूँ...लक्ष्य के साथ हूँ...सतत पढ़ता हूँ...(टेक)...

सर्वज्ञ परमेश्वर मेरे तात हैं...सरस्वती जिनवाणी मेरी मात है...
गणधर-आचार्य मेरे गुरु हैं...स्वयं को पढ़ना मेरा शुरु है...
श्रद्धा के साथ...लक्ष्य के साथ हूँ...(1)...

सिद्ध बनना ही मेरा परम लक्ष्य...सुदीर्घ मेरा यह परम पथ...
जानता अभी मैं अधिक कम...लक्ष्य मेरा है अति महान्...
लक्ष्य के साथ...श्रद्धा के साथ हूँ...(2)...

आत्मविश्वास से ही बढ़ रहा हूँ...सतत पुरुषार्थ भी कर रहा हूँ...
मनन-चिन्तन मैं कर रहा हूँ...प्रयोग-परीक्षण भी कर रहा हूँ...
श्रद्धा के साथ...लक्ष्य के साथ हूँ...(3)...

अनुभव से ही बढ़ा रहा हूँ...विभाव भाव भी छोड़ रहा हूँ...
ज्ञानानन्द भी मुझे आ रहा है...शिक्षा का फल मैं पा रहा हूँ...
लक्ष्य के साथ...श्रद्धा के साथ हूँ...(4)...

सर्वोदय मेरा हो रहा है...आत्मविश्वास भी बढ़ रहा है...
शुद्ध-बुद्ध-सिद्ध में हो पाऊँगा...आत्म-स्वभाव को मैं पाऊँगा...
श्रद्धा के साथ...लक्ष्य के साथ हूँ...(5)...

अनंत गुण-गण को मैं पाऊँगा...मैं ही मुझमें ये सब पाऊँगा...
मैं सच्चिदानन्दमय बनूँगा...'कनक' तब ही मैं पास होऊँगा...

लक्ष्य के साथ...श्रद्धा के साथ हूँ...(6)...

नन्दौड़, दिनांक 18.08.2015, रात्रि 10.30

साधक हूँ छोटा-लक्ष्य है मोटा

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : नन्हा-मुन्ना राही हूँ.....)

साधक हूँ मैं छोटा, लक्ष्य है पर मोटा।
अभी तो हूँ अल्पज्ञ, पर लक्ष्य है सर्वज्ञ।।
श्रद्धा के साथ...निष्ठा के साथ हूँ...(ध्रुव)

इसी हेतु ही मैं करूँ साधना, जिनवाणी की (मैं) करूँ आराधना।
एकांत मौन व साम्य भाव से, शोध-बोध करूँ मैं शुद्ध भाव से।
धैर्य के साथ...ध्येय के साथ हूँ।। (1)

सनम्र सत्यग्राही उदारमना, निःस्वार्थ भाव से ही (मैं) करूँ साधना।
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि रिक्त, स्वाध्याय अध्यापन करूँ सतत।
श्रद्धा के साथ...निष्ठा के साथ हूँ।। (2)

अपेक्षा-उपेक्षा व प्रतीक्षा रिक्त, आकर्षण-विकर्षण-संक्लेश रिक्त।
संकीर्ण पंथ-मत-भेद रहित, आत्मविशुद्धि करूँ (मैं) कामना रिक्त।
धैर्य के साथ...ध्येय के साथ हूँ।। (3)

किसी से न वैरी न किसी से द्वेषी, प्रतिस्पर्द्धा दिखावा ढोंग रहित।
निन्दा चुगली वाद-विवाद रिक्त, साधना करूँ मैं शक्ति-भक्ति सहित।
श्रद्धा के साथ...निष्ठा के साथ हूँ।। (4)

मंच माईक विज्ञापन पाण्डाल रिक्त, सम्मान-भीड़ व धन रहित।
निमंत्रण कार्ड (पत्रिका) टी.वी. प्रोग्राम रिक्त, सरल सहज निस्पृहता सहित।
धैर्य के साथ...ध्येय के साथ हूँ।। (5)

कोई (भी) आये आशीर्वाद वात्सल्य युक्त, नहीं आने पर नहीं संक्लेश चित्त।
जाने पर (शुभ) कामनायें आशीष युक्त, वीतरागी साम्यभावी शान्ति सहित।
श्रद्धा के साथ...निष्ठा के साथ हूँ।। (6)

लक्ष्य मेरा सतत है आत्मकेन्द्रित, आत्मविशुद्धिमय प्रमाण युक्त।
यथायोग्य लक्ष्य की ओर प्रयाण करूँ, 'कनकनन्दी' सतत मैं आत्मा निहारूँ।
धैर्य के साथ...ध्येय के साथ हूँ।। (7)

मै ही लक्ष्य हूँ मैं ही साधन हूँ, मैं ही साधक हूँ मैं ही साध्य हूँ।
मैं ही उपासक मैं ही उपास्य हूँ, मेरे द्वारा ही मैं ही प्राप्य हूँ।

नन्दौड़, दिनांक 23.02.2015, मध्याह्न 1.05

'मैं' हूँ अमृत स्वरूप

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : शास्त्रीय राग....., मन तड़पत....., बिन गुरु.....)

'मैं' तो अमृत हूँ...कभी न मरता...
'मैं' अविनाशी...तन तो विनाशी...
मेरा मरण...कभी न होता...(ध्रुवपद)...

यथा आकाश में बादल की स्थिति...उमड़-घुमड़ कर नाश होती...
किन्तु आकाश तो शाश्वत रहता...तथाहि मैं कभी न मरता...(1)...

जन्म-मरण व बालक वृद्ध दशा...यह सब तन की होती अवस्था...
कर्मजनित यह सब अवस्था...मेरी तो सच्चिदानन्द दशा...(2)...

राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध सभी...मेरी न होती शुद्ध दशा...
तन-मन-इन्द्रिय परे मेरी दशा...शुद्ध-बुद्ध-आनंद अवस्था...(3)...

अज्ञान-मोह से 'मैं' मुझे न जाना...तन-मन-अक्ष को 'मैं' माना...
सत्ता-सम्पत्ति व प्रसिद्धि डिग्री को...'मैं' मानकर भरम कीना...(4)...

इसी से ही मुझे प्राप्त हुए तन...अनंत जन्म-मरण भी कीना...
अभी 'मैं' मुझको 'मैं' रूप जाना...अतः 'कनक' 'मैं' को अमृत माना...(5)...

नन्दौड़, दिनांक 18.08.2015, अपराह्न 5.15

हे! गुरुवर मुझे अभूतपूर्व अमृत बनने का ज्ञान दो
(लौकिक सांसारिक ज्ञान तो सहज-सरल से उपलब्ध है)

-ज्ञानार्थी कनकनन्दी

(राग : छू लेने दो नाजुक.....)

वह ज्ञान मुझे दे दो गुरुवर! जिस ज्ञान से मैं अमृत बनूँ।
भव भ्रमण के अनंत दुःख नाशकर (मैं) सच्चिदानंद बनूँ।। (1)

वह ज्ञान मुझे दो...

सत्ता-संपत्ति व प्रसिद्धि के ज्ञान तो कर्मजनित सहज है।

भोगोपभोग व निन्दा चुगली के, बिना सीखाये भी आता सरल है।। (2)

वह ज्ञान मुझे दो...

हिंसा चोरी व झूठ परिग्रह के ज्ञान होता है कषाय-भावों से।
कलह व वाद-विवाद का ज्ञान, होता है संक्लेश भावों से।। (3)

वह ज्ञान मुझे दो...

खाना-पीना व सोना-जागना ये सब है शारीरिक क्रिया।
इनसे प्रेरित होकर होती है, धनार्जन की क्रिया।। (4)

वह ज्ञान मुझे दो...

इन सबको मुझे अंनत बार किया है अनंत भवों में।
तथापि इसे लौकिक जन पढ़ते है स्कूल व कॉलेजों में।। (5)

वह ज्ञान मुझे दो...

इन ज्ञानों से शाश्वत सुख मिले तो वृषभ क्यों साधु बने।
केवलज्ञान प्राप्त के बाद वे क्यों मोक्ष मार्ग का उपदेश दिये।। (6)

वह ज्ञान मुझे दो...

आदिनाथ राजा अवस्था में असिमसिकृषि वाणिज्य सीखाये।
शिल्प सेवा का भी पाठ पढ़ाया (था) (किन्तु) उससे मोक्ष सुख न मिले।। (7)

वह ज्ञान मुझे दो...

अभी उस आध्यात्मिक देश में नहीं मिलता है आत्मा का ज्ञान।
लौकिक से लेकर धार्मिक साधु तक में नहीं है प्रायः आत्मिक ज्ञान।। (8)

वह ज्ञान मुझे दो...

ऐसे अलौकिक ज्ञान मुझे चाहिये, जिससे मैं बनूँगा सच्चिदानंद।
आत्मिक अनंत वैभव पाकर, कनक बनेगा शुद्ध-बुद्ध आनंद।। (9)

वह ज्ञान मुझे दो...

नन्दौड़, दिनांक 22.08.2015, रात्रि 9.04

(यह कविता मुनिश्री आध्यात्मनंदी के कारण बनी।)

अन्य के कारण मैं सुभाव को नहीं त्यागूँ!

-आ. कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की धड़कन.....)

सुभाव को मेरे कोई न समझे, तथापि सुभाव को मैं नहीं त्यागूँगा।

सूर्य को चक्षुहीन नहीं देखते (हैं), तो भी सूर्य स्वप्रकाश न त्यागता है।।
तीर्थंकर-बुद्ध ईसा सुकरात को (भी), नहीं समझ पाये अधिक जन (भी)।
दिव्य ध्वनि को भी पूर्ण समझ न पाते, गणधर व इन्द्र विद्वान् तक (भी)।।
जो मानव स्वयं को न समझ पाते (है), वे क्या समझेंगे मेरे सुभाव को।
जो दीपक स्वयं न प्रकाशित होता (है), वह क्या प्रकाशित कर सकेगा अन्य को।।
स्वयं का सुधार मुझे पहले करना है, यथाशक्ति करूँगा मैं अन्य के भी।
किन्तु अन्य के कारण से भी मैं, बगाडूँगा नहीं सुभाव को।।
वैद्य न रोगी होता रोगी के कारण, ज्ञानी-अज्ञानी न होता अज्ञानी के कारण।
सिद्ध संसारी न बनते संसारी के कारण, (तथाहि) न बनूँ कुभावी अन्य के कारण।।
यह भी अनुभव मैंने अनेक किया, सुभाव से मुझे मिलते (ही) लाभ हैं।
समता शांति ज्ञान स्वास्थ्य भी लाभ, अन्य भी सुधरते व मानते मुझे।।
अनेक अनुभव (भी) हुए हैं अभी तक, कुभावी जीवों/(जनों) को न मिलता सही सुख।
सुभाव ही स्वर्ग मोक्षदायक होता, अतः सुभाव को 'कनक' सदा भाता है।।
(कुछ जन मुझे पहले से भी अधिक अच्छा समझ पा रहे हैं-इसी से प्रेरित होकर यह कविता बनी।)

नन्दौड़, दिनांक 19.08.2015, रात्रि 8.45

आत्म-सम्बोधन

जिया तू आगे बढ़! अन्य का विकल्प छोड़!

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे!.....)
जिया रे! तू आगे ही आगे बढ़ो!
कौन जानेगा...कौन मानेगा...ऐसा विकल्प छोड़ो...(ध्रुव)
तीर्थंकर की दिव्य ध्वनि को...समझ न पाते गणधर...
अनन्तवाँ एक भाग समझ पाने से...क्या दोषी होते तीर्थंकर...
ऐसा ध्यान तू कर...जिया रे...(1)...
तीर्थंकर की अचिन्त्य महिमा...अन्य भी समझ न पाते...
केवली को छोड़ इन्द्र/(वृहस्पति) तक भी...पूर्ण समझ न पाते...
ऐसा तू समझा कर...जिया रे...(2)...

तथापि तीर्थंकर दोषी न होते...ऐसा विचार तू कर...
सूक्ष्म से सूक्ष्म गूढ़ से गूढ़...रहस्यों को तू जानाकर/(समझा कर/माना कर/कहा कर)...
परम रहस्य जान रे...जिया रे...(3)...

लोकानुगतिक होते हैं लोग...न होते हैं परमार्थिक...
परमार्थिक तो अलौकिक होता...मुनि वृत्ति अलौकिक...
तू अलौकिक बन रे...जिया रे...(4)...

काम भोग कथा को लोग तो जानते...अनादि संस्कार के कारण...
अभूत अश्रुत अनुभव शून्य...आध्यात्मिक जानना/(मानना/करना) कठिन...
अध्यात्म जान रे...जिया रे...(5)...

तुझे तो आध्यात्मिक प्रिय लगता...यह ही है परम श्रेय...
इसे प्राप्ति हेतु चक्रवर्ती भी...त्यागते सांसारिक मोह...
मुमुक्षु बने रे...जिया रे...(6)...

इसे प्राप्त करना ही परम उपलब्धि...अन्य सभी होते हेय...
इसी से तुझे सुख अनन्त मिलेगा...'कनक' का परम ध्येय...
परम लक्ष्य वर रे...जिया रे...(7)...

नन्दौड़, दिनांक 02.09.2015, रात्रि 1.25 से 2.00
(यह कविता श्रीमती विजयालक्ष्मी जैन के कारण बनी।)

मुझे ज्ञान एवं आनन्द क्यों प्रिय लगता है?

(मेरा महान् प्रश्न...लक्ष्य-धर्म व स्वभाव)

-आ. कनकनन्दी

(चाल : सायोनारा....., भातुकली.....)

मैं कौन हूँ क्या है मेरा धर्म? क्या स्वरूप है क्या है लक्ष्य?
यह है मेरा महान् प्रश्न, इसे प्राप्त करना श्रेष्ठ कर्त्तव्य।। (1)

मैं नहीं शरीर मैं हूँ आत्मा, 'ज्ञानानन्दमय' मैं परमात्मा।
आगम में भी ऐसा मैं पढ़ा, अनुभव में भी ऐसा ही आता।। (2)

मेरा स्वरूप ज्ञान होने से, जानने की मेरी होती प्रवृत्ति।
शरीर न होता है ज्ञानमय, शव में न होती ज्ञान प्रवृत्ति।। (3)

आनंद ही मेरा होता स्वभाव, जिसके लिये मैं होता प्रवृत्त।
आनंद से मुझे होता आह्लाद, जिससे होता भाव प्रमोद।। (4)

शरीर न होता है आनंदमय, शव में न होता आनंद भाव।
शव को जलाओ या गाली दो, उसमें न होता चैतन्य भाव।। (5)

अतएव मैं हूँ ज्ञानानन्द, ज्ञानानन्द पूर्णता ही (मेरा) कर्त्तव्य।
यह ही मेरा धर्म स्वरूप, इसे प्राप्त करना 'कनक' लक्ष्य।। (6)

नन्दौड़, दिनांक 03.09.2015, रात्रि 12.30

बाह्य प्रभावना के त्याग से अंतरंग लाभ

(श्रीसंघ की कार्य पद्धति)

(बाह्य प्रभावना के त्याग से बढ़ रही है हमारे ससंघ की अंतरंग प्रभावना व देश-विदेश में ज्ञान प्रभावना...)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की....., क्या मिलिये.....)

मैं कुछ त्याग कर रहा हूँ...धीरे-धीरे बाह्य प्रवृत्तियाँ...
आत्मविशुद्धि समता शांति...हेतु ये सब प्रवृत्तियाँ...(टेक)...

पूर्व से ही मेरी बाह्य, प्रवृत्तियाँ भी कम ही रही...
ज्ञान के प्रचार हेतु कुछ, प्रवृत्तियाँ पूर्व में रही...
रोज ही अध्यापन साधुओं को, कराता आ रहा हूँ...
विद्यार्थी व प्रौढ़ों को भी, अध्यापन कराता आ रहा हूँ...(1)...

कक्षा शिविर व संगोष्ठी, प्रतियोगिता प्रश्नमंच आदि...
विधान व पञ्चकल्याणक, साहित्य लेखन प्रवचनादि...
उन्नीस सौ नब्बे (1990) के बाद, प्रौढ़ों को पढ़ाना छोड़ दिया...
स्वाध्याय शिविर संगोष्ठी आदि में, पढ़ाना नहीं छोड़ा...(2)...

दो हजार दो (2002) से विद्यार्थियों को पढ़ाना छोड़ दिया...
शिविर स्वाध्याय संगोष्ठी आदि में, पढ़ाना नहीं छोड़ा...
उन्नीस सौ पंचासी (1985) से बड़े, विधान हेतु न कहता हूँ...
सुद्रव्य क्षेत्र काल भावादि के कारण, विधान में रहता हूँ...(3)...

उन्नीस सौ बयाणवे (1992) से, पञ्चकल्याणक हेतु न कहता हूँ...
सुद्रव्य क्षेत्र काल आदि के कारण, पञ्चकल्याणक में रहता हूँ...
दो हजार दस (2010) से शिविर, लगाने हेतु न कहता हूँ...
स्वेच्छा से कोई लगाने पर, शिविरार्थियों को पढ़ाता हूँ...(4)...

दो हजार दस (2010) से संगोष्ठी, हेतु भी न कहता हूँ...
स्वेच्छा से आयोजन करने पर, सान्निध्य भी देता हूँ...
ऐसा ही प्रवचन-प्रश्नमञ्च, व प्रतियोगिता आदि...
आयोजन यदि स्वेच्छा से करते, देता हूँ सान्निध्य आदि...(5)...

स्वेच्छा से न भाग लेते (लोग), भक्ति व शक्ति सहित...
आत्म कल्याण हेतु अनुशासित, व समय उचित...
इन कारणों से समय शक्ति, श्रम व द्वंद्व भी बच जाते...
जिसके कारण स्वाध्याय लेखन, व चिन्तन अधिक होते...(6)...

अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा, भी करना नहीं होता...
बुलाना बोलना लंद-फंद व, संक्लेश नहीं होता...
इसके कारण श्रीसंघ में, समता (शांति) साधना बढ़ रही...
देश-विदेशों में जैनधर्म की, प्रभावना भी बढ़ रही...(7)...

देश-विदेश के प्रवृद्धजन भी, लाभान्वित हो रहे है...
स्वेच्छा से वे योगदान देते, व मुझसे ज्ञान लेते हैं...

/(कनक (संघ) निस्पृह रहते हैं)...(8)...

नन्दौड़, दिनांक 04.09.2015, रात्रि 10.45

सन्दर्भ-

विरम किमपरेणा कार्य कोलाहलेन,
स्वयमपि निभृतः सन् पश्य षण्मासमेकम्।
हृदय सरसि पुंसः पुद्गलाद्भिन्न धाम्नो,
ननु किमनुपलब्धिर्भाति किञ्चोपलब्धि।। (34) (समयसार कलश)

हे आत्मन्! तू बिना प्रयोजन के इस निकम्मे कोलाहल से विरक्त हो और आत्मस्वरूप में लीन होकर छह मास पर्यन्त इस चैतन्य स्वरूप आत्मा को देख।

पुद्गल से भिन्न तेज वाले आत्मस्वरूप की प्राप्ति क्या तेरे इस हृदय सरोवर से नहीं होगी? अर्थात् अवश्य होगी।

अतः आत्मस्वरूप के अभिलाषी जनों को पञ्चेन्द्रिय के विषयों को हेय समझकर उनके परित्याग करने का प्रयत्न करे तथा एकान्त मे अपने उपयोग को आत्म तत्त्व के प्रति एकाग्र करने का प्रयत्न करें।

मेरा संघर्ष व मेरी प्रतिज्ञा

-आ. कनकनन्दी

(चाल : कहाँ गये चक्री....., आत्मशक्ति....., सायोनारा.....)

अनंत संघर्ष किया (हूँ) है मैंने, अनंत कालों से।
राग द्वेष मोह काम के कारण, अनंत जीवों से।। (स्थायी)

सत्ता संपत्ति प्रसिद्धि व, भोगोपभोग के कारण।
संघर्ष किया है मैंने व्यसन व मदों के कारण।
शत्रु-मित्र व भाई-बंधु, कुटुम्ब के कारण।
संघर्ष किया है मैंने जाति धर्म (राष्ट्र) के कारण।। (1)

इन सब कारणों से मैंने, कर्मबंध किया है अनंत।
चौरासी लाख योनि मध्य में, भ्रमण किया है अंनत।
इसी से मुझे अनंत जन्म, मरण धारण करना पड़ा।
शारीरिक व मानसिक अनंत, दुःखों को सहना पड़ा।। (2)

अभी मुझे इन सभी संघर्षों को, नहीं करना है कदापि।
इसी से विपरीत राग द्वेष मोहादि से, संघर्ष करना है अभी।
इनके नाश हेतु मैं, कर रहा हूँ ध्यान व अध्ययन।
समता शांति व निस्पृह निराडम्बर एकांत मौन साधन।। (3)

ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि रहित, वाद-विवाद विरहित।
आत्मविश्वास व आत्मविशुद्धि से 'कनक' दत्त-चित्त सतत।। (4)

नन्दौड़, दिनांक 04.09.2015, रात्रि 9.00

अनुक्रमणिका

अ.क्र.	विषय	पृ.सं.
1.	मैं (आ. कनकनन्दी) हूँ विश्व गुरु सर्वज्ञ देव के- महानतम विश्वविद्यालय का छोटा-सा विद्यार्थी	2
2.	छात्र हूँ छोटा किन्तु लक्ष्य है मोटा	3
3.	साधक हूँ छोटा-लक्ष्य है मोटा	4
4.	'मैं' हूँ अमृत स्वरूप	5
5.	हे! गुरुवर मुझे अभूतपूर्व अमृत बनने का ज्ञान दो	5
6.	अन्य के कारण मैं सुभाव को नहीं त्यागूँ	6
7.	जिया तू आगे बढ़! अन्य का विकल्प छोड़	7
8.	मुझे ज्ञान एवं आनंद क्यों प्रिय लगता है?	8
9.	बाह्य प्रभावना के त्याग से अंतरंग लाभ (कनकनन्दी ससंघ की कार्य पद्धति)	9
10.	मेरा संघर्ष व मेरी प्रतिज्ञा	11
	'सत्य-साम्य-सुखामृत'	
1.	मेरी इष्ट-प्रार्थना	15
2.	आनंद-वंदना	15
3.	स्व-शुद्ध आनंद	16
4.	आध्यात्मिक श्रमण के आत्म चिन्तन	17
5.	सदा करणीय व विकल्पनीय	18
6.	आध्यात्मिक मैं (अहं) से मोक्ष तो मोहात्मक मैं (अहं/अहंकार) से संसार	19
7.	आध्यात्मिक व नैतिक भाव-व्यवहार	19
8.	यथार्थता बनाम अयथार्थता	20
9.	स्व-पर उपकारी गुरु	21

10.	परम श्रेष्ठ-ज्येष्ठ-उपादेय : आध्यात्मिक	22
11.	आत्मा की शुद्धता ही धर्म	23
12.	आत्म विस्मृति से संसार तो आत्मोपलब्धि ही मोक्ष	24
13.	भाव विशुद्धि धर्म तो भाव अशुद्धि अधर्म	24
14.	निश्चय व्यवहार हिंसा एवं अहिंसा	25
15.	तू ही तेरा उत्थान व पतनकर्त्ता	28
16.	(स्वात्म-चिन्तन) परम श्रेष्ठ-ज्येष्ठ-प्राप्य योग्य स्व-आत्मा	29
17.	लौकिक से परे व विपरीत भी है : आध्यात्मिक	30
18.	जीवों की दिव्य कहानी	31
19.	आत्मविश्वास व आत्मगौरव से विकासों का शुभारंभ	32
20.	परम-सत्य को नहीं जान पाने के कारण	35
21.	विश्व को शांति की शिक्षा देने वाला भारत अशांत क्यों?	35
22.	व्यापक ज्ञान बिन सही निर्णय नहीं	37
23.	प्रशंसा पुण्य तो निन्दा पाप	37
24.	वर्तमान ही है शक्तिमान्	39
25.	यथार्थ सत्य-तथ्य व ढोंग-पाखण्ड-आडम्बर	40
26.	यथार्थ सत्य-तथ्य व ढोंग-पाखण्ड-आडम्बर (बागड़ी)	41
27.	अन्य जीवों में भी होते हैं मनुष्य के समान अनेक दुर्गुण व सुगुण	43
28.	स्वभाव चिन्तन-रमण से स्वभाव लाभ	44
29.	मैं (आत्मा) व शरीर में भिन्नता	45
30.	प्राथमिक धार्मिक-सम्यग्दृष्टि का स्वरूप	45
31.	77 गुण व 53 क्रिया युक्त होते हैं श्रावक	47
32.	हिंसा व अहिंसा का व्यापक स्वरूप	49
33.	द्रव्य हिंसक कथंचित् अहिंसक किन्तु परिग्रहधारी निश्चय से हिंसक	51
34.	द्रव्य हिंसा से बंध भजनीय किन्तु परिग्रह से बंध अवश्य है	51
35.	मेरी (आ. कनकनन्दी) अहिंसा की साधना/(यात्रा)	61

36.	एक के वध में अनेकों की रक्षा का विचार भी हिंसा	62
37.	पापी को पाप से बचाने के लिए भी मारना हिंसा	63
38.	दुःखी को भी नहीं मारना चाहिए	64
39.	सुखी को भी नहीं मारना चाहिए	64
40.	स्वाध्याय ही परम तप व धर्म ध्यान	65
41.	ज्ञानाभ्यास कर्मक्षय का हेतु	66
42.	अध्ययन ही ध्यान है	66
43.	सम्यक्ज्ञान ही धर्मध्यान	67
44.	श्रुताभ्यास के बिना सम्यक् तप नहीं	68
45.	मुनिराज तत्त्वचिंतक होते है	68
46.	ज्ञानाभ्यास से मुक्ति	69
47.	श्रुत की भावना से उपलब्धि	70
48.	ख्याति पूजादि रहित तप-त्याग से पुण्य से मोक्ष तक की प्राप्ति	70
49.	अशुद्ध भाव से किया हुआ त्याग कर्मक्षय का कारण नहीं	71
50.	धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त विकृतियाँ	76
51.	ईर्ष्यालु मानव जाति	77
52.	समीक्षात्मक दोहावली	78
53.	अनुभव दोहावली	79
54.	जैन धर्म की विशेषता : आत्मा ही बनता है परमात्मा	81
55.	शुद्धात्मा-ध्यान सूत्राणि	82
56.	सुखी होने के धार्मिक-कर्म सैद्धांतिक-वैज्ञानिक कारण (हैप्पी हार्मोन)	88
57.	उत्तरोत्तर दुर्लभ से दुर्लभतर व दुर्लभतम उपलब्धि	89
58.	गीताञ्जली-धारा का उद्गम-प्रस्रवण-प्रसार	91
59.	आध्यात्मिक भाव-व्यवहार बिना मनुष्य पशु से भी नीच	92

सत्य-साम्य-सुखामृत
मेरी इष्ट-प्रार्थना
(मेरे ही परम सत्य साम्य सुखामृत को मैं पाऊँ)

-आ. कनकनन्दी

(चाल : हर देश में तू....., सायोनारा....., वह शक्ति हमें दो.....)

वह मंत्र (ज्ञान, शिक्षा) मुझे दे दो गुरुवर! जिस मंत्र से मैं मेरा सत्य पाऊँ!
परम समता के बल पर, परम सुखामृत (को) मैं पाऊँ।। (ध्रुव)

मुझ में ही मैं हूँ अनादि से, पर मैं मुझ को नहीं पा सका।
अज्ञान मोह राग द्वेष कारण, मैं मुझ को ही पा न सका।। (1)

अज्ञान मोहादि के कारण, मैं समता को भी पा न सका।
परम समता के अभाव से मैं, परम सुखामृत भी पा न सका।। (2)

शरीर अक्ष व मनादि को मैं, स्व स्वरूप मान अहंकार किया।
सत्ता-संपत्ति शत्रु मित्रादि को, मेरा मानकर ममकार किया।। (3)

अभी (तव) परम आध्यात्मिक मंत्र (ज्ञान, शिक्षा) से, अहंकार ममकार दूर हुए।
अहं को ही मैं निज रूप जान, सत्य समता भी प्रगट हुए।। (4)

इनके बल पर मैं अज्ञान मोह, राग द्वेषादि को शीघ्र दूर करूँ।
परम सत्य समता पाकर, परम सुखामृत (मैं) उपभोग करूँ।। (5)

इसी से ही समस्त ब्रह्माण्ड के, परम सत्य मैं जान पाऊँ।
सत्य शिव सुन्दर सच्चिदानन्द, बनकर मैं में ही रम जाऊँ।। (6)
('कनक' शुद्ध रूप मैं हो जाऊँ)

नन्दौड़, दिनांक 02.09.2015, रात्रि 8.30

आनंद-वंदना

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : शत-शत वंदन....., भातुकली.....)

आनंद आनंद वन्दे निज आनंदम्.....
आनंद आनंद वन्दे ज्ञान आनंदम्.....
आनंद आनंद वन्दे आत्म आनंदम्.....

आनंद आनंद वन्दे शुद्ध आनंदम्.....
आनंद आनंद वन्दे सहज आनंदम्.....
आनंद आनंद वन्दे बुद्ध आनंदम्.....
आनंद आनंद वन्दे परम आनंदम्.....
आनंद आनंद वन्दे शिव आनंदम्.....
आनंद आनंद वन्दे चित् आनंदम्.....
आनंद आनंद वन्दे सत्य आनंदम्.....
आनंद आनंद वन्दे ध्रुव आनंदम्.....
आनंद आनंद वन्दे घन आनंदम्.....
आनंद आनंद वन्दे चैतन्य आनंदम्.....
आनंद आनंद वन्दे सिद्ध आनंदम्.....
आनंद आनंद वन्दे ब्रह्म आनंदम्.....
आनंद आनंद वन्दे साम्य आनंदम्.....
आनंद आनंद वन्दे साम्य आनंदम्.....
आनंद आनंद वन्दे श्रेय आनंदम्.....
आनंद आनंद वन्दे मोक्ष आनंदम्.....
आनंदमेव आनंद...आत्म स्वरूप आनंदम्...
आनंद निमित्तम्...'कनक' ध्याये स्वरूपम्...

नन्दौड़, दिनांक 31.08.2015, प्रातः 8.42

स्व-शुद्ध आनंद

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : सायोनारा....., देहाची तिजोरी.....(मराठी).....)

मैं हूँ सच्चिदानन्द आनन्दकन्द...मैं हूँ नित्यानन्द रूप ज्ञानानन्द...
मैं हूँ चिन्मयानन्द मय शुद्धानन्द...मैं हूँ सत्य-शिव-सुन्दर निजानन्द...(1)...
मैं हूँ विज्ञानघन-चैतन्य आनन्द...मैं हूँ शुद्ध-बुद्ध रूप परमानन्द...
मैं हूँ सहज-शुद्धमय शिवानन्द...मैं हूँ सदानन्द व निर्मलानन्द...(2)...
मैं हूँ निर्भयानन्द-अनुपम आनन्द...अचिन्त्य आनन्दमय मम स्वरूप...
मैं हूँ अक्षयानन्द व स्वरूपानन्द...अव्याबाधमय अनन्त आनन्द...(3)...

मैं हूँ केवलज्ञानानन्द विद्यानन्द...तन-मन-अक्षातीत आत्मानन्द...
द्रव्य-भाव-नोकर्म रहित गुणानन्द...आत्मनिर्भर मैं हूँ पूर्णानन्द...(4)...
निराकुलमय मैं हूँ प्रत्यक्ष आनन्द...अनुपम-अद्वैत व ब्रह्मानन्द...
लक्ष्य प्राप्य व स्वरूप में मैं हूँ आनन्द...कनकनन्दी का स्वाधिकार आनन्द...(5)...
यह आनन्द मिले स्वाधीनता से...आत्मावलम्बन व आत्मोपलब्धि से...
मेरा आनन्द स्रोत मैं हूँ स्वरूप से...आनन्द हेतु आवश्यकता नहीं अन्य से...(6)...

नन्दौड़, दिनांक 31.08.2015, मध्याह्न 3.00

आध्यात्मिक श्रमण के आत्म चिन्तन

आध्यात्मिक श्रमण महान् क्यों?

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की धड़कन....., भातुकली.....(मराठी)....., दोहाचाल.....)

मैं जब हूँ निश्चय से...ज्ञानानन्द स्वरूप हूँ...
स्वयंभू-स्वयंपूर्ण-सनातन...अविनाशी-अमूर्त हूँ...(स्थायी)...

तब मुझे क्या भय है?...क्या चिन्ता व अभाव है?...
दीन-हीन व अहंकार न...छोटा-बड़ा का भाव है...
मुझसे न कोई छोटा है...न कोई मुझसे महान् है...
मुझसे धनी न कोई है...न कोई मुझसे निर्धन है...(1)...

मुझसे बड़ा न ज्ञानी है!...मुझसे बड़ा न दानी है!...
वैभव सभी के समान है!...सभी सम आत्मिक धनी हैं!...
राजा-महाराजा-चक्रवर्ती...इन्द्र के वैभव से भी...
मेरे वैभव तो अनंतगुणा...ज्ञान-शक्ति व सुख भी...(2)...

राजादि के वैभव कर्मजनित...नश्वर व भौतिक है...
मेरे वैभव तो कर्मरहित...शाश्वत-अमूर्तिक है...
सांसारिक छोटा-बड़ा आदि...कर्म सापेक्ष विकार है...
''सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया'' से...सभी जीव निर्विकार है...(3)...

अतएव शुद्ध नय से...आध्यात्मिक ही महान् है...

अतः आध्यात्मिक सम्पन्न...साधु संसार में महान् है...
कर्मजनित सर्व वैभव तो...भौतिक व पररूप है...
आत्म वैभव मेरे तो...आत्मजनित अमूर्तिक/(निज रूप) है...(4)...

इसी हेतु ही चक्रवर्ती भी...भौतिक वैभव त्यागते हैं...
आत्म साधना के बल पर...आत्म-वैभव प्राप्त करते हैं...
इसी हेतु ही चक्रवर्ती भी...श्रमण को नमन करते हैं...
आत्म-वैभव की प्राप्ति हेतु...'कनक' स्व-आत्मा को ध्यावे है...(5)...

नन्दौड़, दिनांक 29.09.2015, रात्रि 8.54 (रक्षाबंधन पर्व)

सदा करणीय व विकल्पनीय

(मेरा (आ. कनकनन्दी का) आत्म-सम्बोधन)

-आ. कनकनन्दी

(चाल : यमुना किनारे श्याम.....(इक परदेशी)....., हर देश में तू...हर भेष में तू..., सायोनारा.....)

सदा आत्मविशुद्धि किया ही करो...भले धार्मिक क्रिया कम भी करो...
साधना समता की सदा ही करो...भले अन्य साधना कम भी करो...(स्थायी)...

महान् पावन लक्ष्य करो धारण...शक्ति-अनुसार करो पालन...
क्षुद्र लक्ष्य को न करो धारण...भले सफलता अभी ही पा लो...(1)...

समता-शांति से जियो जीवन...भले प्रसिद्धि न मिले आजीवन...
शोषण-भ्रष्टाचार कभी न करो...भले दान-सहयोग कम भी करो...(2)...

चिन्तन-अनुकरण अधिक करो...भले पाठ कंठस्थ करो न करो...
प्रयोग-अनुभव भी अधिक करो...'कनक' पाठ रटना कम भी करो...(3)...

पर अपकार तो कभी न करो...उपकार भले करो या न करो...
स्व को उपदेश सदा ही करो...पर को उपदेश करो न करो...(4)...

स्व-सुधार सदैव किया ही करो...पर-सुधार करो या न करो...
स्व-दीपक पहिले प्रज्ज्वलित करो...(कनक) पर-दीपक बाद में जलाया करो...(5)...

नन्दौड़, दिनांक 31.08.2015, रात्रि 10.35 व प्रातः 8.05

आध्यात्मिक मैं (अहं) से मोक्ष तो मोहात्मक मैं (अहं/अहंकार) से संसार

-आचार्य कनकनन्दी

(राग : छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा.....)

आध्यात्मिक मैं/(अहं) के कारण, मिलता है मोक्ष सुख।
मोहात्मक मैं/(अहं) के कारण, मिलता है सांसारिक दुःख।। (1)

आत्म (मैं) विश्वास ज्ञान चारित्र से, मिलता (है) मोक्ष-सुख।
अहंकार व ममकार से, मिलता है सांसारिक दुःख।। (2)

निश्चय नय से स्व-आत्मा/(मैं) को, जब मानता है (है) सिद्ध स्वरूप।
उसे ही आत्म श्रद्धान कहते, जो होता (है) आत्म विश्वास रूप।। (3)

इसी से ज्ञान चारित्र भी होता, है सम्यक् स्वरूप।
तीनों की पूर्णता से जीव, बने मोक्ष स्वरूप।। (4)

इसीसे विपरीत है अहंकार, तथा ममकार स्वरूप।
देहादि स्वरूप को मैं मानना, होता अहंकार स्वरूप।। (5)

परिग्रह को मेरा मानना, होता है ममकार स्वरूप।
ये ही राग-द्वेष-मोह जो, होता है अनात्म स्वरूप।। (6)

मैं काला गोरा दुबला मोटा, या बालक युवा वृद्ध।
जो मानता ऐसा स्वयं को, वह अहंकार मय होता।। (7)

सत्ता संपत्ति प्रसिद्धि डिग्री को, मानना मेरी है ममत्व।
पिता-पुत्र या शत्रु-मित्र, मानना मेरा है ममत्व।। (8)

इसी के कारण ही संसार में, परिभ्रमण होता।
संसार नाश हेतु 'कनक', अहं/(मैं) का ध्यान करता।। (9)

नन्दौड़, दिनांक 01.08.2015, रात्रि 10.05 व 3.10

आध्यात्मिक व नैतिक भाव-व्यवहार

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : यमुना किनारे....., देहाची तिजोरी....., हर देश में तू...हर वेश में तू.....)

अक्षमा भाव न धारण करो...क्षमा माँगे कोई नहीं भी माँगे...
क्षमा भाव से होता स्वयं को लाभ...आत्म पतन का हेतु अक्षमा भाव...

गलती न करने का भाव करो...गलती होने पर शिक्षा भी लो...
अन्य की गलती से शिक्षा भी लो...स्वयं की गलती से बचते चलो...(1)...
दीन-हीन-अहंकार कभी न करो...स्वाभिमान से सतत विकास करो...
आत्मविश्वास कभी न छोड़ो...आत्मिक गुणों में विश्वास करो...
ईर्ष्या द्वेष घृणा तृष्णा न करो...महान् लक्ष्य-उच्च आदर्श धरो...
प्रतिस्पर्द्धा बिना प्रगति करो...संकीण/(क्षुद्र) लक्ष्यों में न संतोष करो...(2)...
समय-शक्ति/(बुद्धि) का न दुरुपयोग करो...निन्दा-चुगली-कुतर्क-द्वन्द्व न करो...
स्वयं की रेखा लंबी करते चलो...अन्य की रेखा को मिटाया न करो...
तन-मन-आत्मा को स्वस्थ बनाओ...आध्यात्मिक-मानसिक शांति पाओ...
इसके विपरीत भाव-काम न करो...'कनक' अमूल्य जीवन नष्ट न करो...(3)...

नन्दौड़, दिनांक 01.09.2015, मध्याह्न 2.30

यथार्थता बनाम अयथार्थता

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छू लेने दो नाजुक होंठों को.....)

'सत्य' जब तुम जाने नहीं...सत्यवादी (तुम) कैसे हुए...?!...
'नैतिक' ही जब तुम नहीं...आध्यात्मिक (तुम) कैसे हुए...?!...(स्थायी)...

धन/(तन) की भी तृष्णा नहीं गई...धार्मिक भी तुम कैसे हुए...?!...
ईर्ष्या घृणा तृष्णा नहीं गई...मुमुक्षु भी तुम कहाँ हुए...?!...
फैशन-व्यसन ही नहीं त्यागे...शाकाहारी तुम कैसे हुए...?!...सत्य (1)

संक्लेश भाव तो नहीं त्यागे...अहिंसक तुम कैसे हुए...?!...
स्व-दोषों को तुम नहीं त्यागे...शान्तिप्रिय तुम कैसे हुए...?!...
मिलावट-शोषण त्यागे नहीं...अचौर्यव्रती कैसे हुए...?!...सत्य (2)

भ्रष्टाचार तुमने नहीं त्यागा...संतोषी/(अपरिग्रही) तुम कैसे हुए...?!...
निन्दा-चुगली भी नहीं त्यागे...सज्जन भी तुम कैसे हुए...?!...
संकीर्ण पंथ-मत त्यागे नहीं...अनेकान्तवादी कैसे हुए...?!...सत्य (3)

हठवादिता को भी त्यागे नहीं...स्यादवादी तुम कैसे हुए...?!...
परोपकार व दान करते नहीं...अपरिग्रही तुम कैसे हुए...?!...

अश्लीलता-फैशन त्यागे नहीं...शीलवन्त तुम कहाँ रहे...?!...सत्य (4)

परोपकार जब नहीं करते...उदार भी तुम कहाँ हुए...?!...
दिखावा-आडम्बर करते जब...सदाचारी तुम कहाँ हुए...?!...
पर देखादेखी जब तुम करते...विवेकशील तुम कहाँ हुए...?!...सत्य (5)

निषिद्ध व्यापार जब करते हो...सात्विक आहारी कैसे हुए...?!...
स्व-कर्त्तव्य जब नहीं करते...अधिकारी तुम कैसे हुए...?!...
उत्श्रृंखलता जब करते हो...स्वतंत्र भी तुम कैसे हुए...?!...सत्य (6)

प्रसन्नता/(शांति) जब तुम्हें न मिली...सम्पन्नता तुम्हें कहाँ मिली...?!...
संस्कारवान् जब नहीं बने...शिक्षा भी तुम्हें कहाँ मिली...?!...
आध्यात्मिक-संस्कृति न पालते...भारतीय तुम कहाँ हुए...?!...सत्य (7)

'कनक' यह सब वर्णन किया...यह मर्म न समझे तो क्या समझे...?!...सत्य (8)

नन्दौड़, दिनांक 28.08.2015, रात्रि 8.55

स्व-पर उपकारी गुरु

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : कभी तो ये गुरुवर.....)

स्व-पर उपकारी...गुरु होते हैं...स्वयं तो तरते है...अन्य को तारते हैं...
ब्रह्मा-विष्णु-महेश...गुरु होते हैं...स्व-पर प्रकाशी...दीपक होते हैं...
तो ध्याऊँ मैं/(तो सेवूँ मैं)...स्व-पर...(टेक)...

सतत ये गुरुवर...समता में रहते हैं...आत्म-विशुद्धि हेतु...साधना करते है...
ज्ञान-ध्यान व तप में...ये रत रहते है...राग-द्वेष-मोह से...ये दूर रहते हैं...
तो ध्याऊँ मैं...स्व-पर उपकारी...(1)...

ख्याति-पूजा-लाभ व लंद-फंद से...तेरा-मेरा भाव...धनी-गरीबों से...
तनाव-अशांति व...फूट-लूट से...दूर रहकर मस्त...आत्म-शुद्धि में...
तो सेवूँ मैं...स्व-पर उपकारी...(2)...

कभी ये गुरुवर...स्वाध्याय कराते हैं...आत्मा को परमात्मा...बनाना सिखाते हैं...
आगम व अनुभव से...धर्म सिखाते हैं...अशुभ-शुभ व...शुद्ध बताते हैं...
तो ध्याऊँ मैं...स्व-पर उपकारी...(3)...

कभी तो ये गुरुवर...उपदेशी बनते हैं...उदार-पावन का...पाठ पढ़ाते हैं...
विश्व हितकर...शिक्षा भी देते हैं...समता व शांति का...पाठ पढ़ाते हैं...
तो सेवूँ मैं...स्व-पर उपकारी...(4)...

सदैव श्री गुरुवर...सत्य शोध करते हैं...शोध-बोध से...आत्म-शुद्धि करते हैं...
स्वयं तरते हैं...अन्य को तारते हैं...ऐसे ही सद्गुरु...'कनक' को भाते हैं...
तो ध्याऊँ मैं...स्व-पर उपकारी...(5)...

नन्दौड़, दिनांक 22.08.2015, मध्याह्न 2.54

आध्यात्मिक सारमय कविता

परम श्रेष्ठ-ज्येष्ठ-उपादेय : आध्यात्मिक

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : ज्योति कलश छलके....., नीले गगन के तले.....)

धन्य! धन्य! अध्यात्म...2/(आत्मिक)ऽऽऽ
सबसे परे...सबसे न्यारे...सबसे श्रेष्ठ-ज्येष्ठ तुमऽऽऽ...(ध्रुव)...

पाप से परे...पुण्य सहारे...आव्रत परे...व्रत सहारे...
उपलब्धि तेरी...2...धन्य! धन्य!...(1)...

अनीति परे...नीति सहारे...कुध्यान परे...सुध्यान द्वारा...
उपलब्धि तेरी...2...धन्य! धन्य!...(2)...

प्रमाद परे...समता द्वारा...उत्शृंखल परे...समिति द्वारा...
उपलब्धि तेरी...2...धन्य! धन्य!...(3)...

भोग से परे...वैराग्य द्वारा...असंयम परे...संयम द्वारा...
उपलब्धि तेरी...2...धन्य! धन्य!...(4)...

कषाय परे...शुचिता द्वारा...संक्लेश परे...शांति द्वारा...
उपलब्धि तेरी...2...धन्य! धन्य!...(5)...

भेद-भाव परे...वीतराग द्वारा...अज्ञान परे...सुज्ञान द्वारा...
उपलब्धि तेरी...2...धन्य! धन्य!...(6)...

कुशील परे...सुशील द्वारा...ग्रंथों से परे...निर्ग्रंथ द्वारा...
उपलब्धि तेरी...2...धन्य! धन्य!...(7)...

संकल्प परे...मोक्ष संकल्प से...विकल्प परे...निर्विकल्प से...

उपलब्धि तेरी...2...धन्य! धन्य!...(8)...

लौकिक परे...व्यवहार द्वारा...निश्चय से...तेरी प्राप्ति...

उपलब्धि तेरी...2...धन्य! धन्य!...(9)...

अशुभ परे...शुभ के द्वारा...शुद्ध से तेरी...प्राप्ति होती...

उपलब्धि तेरी...2...धन्य! धन्य!...(10)...

तेरी उपलब्धि...परम उपलब्धि...तू ही तो है...परम धर्म...
तेरे बिना सभी...धर्म है अधर्म...'कनक' का स्व-धर्म...

धन्य! धन्य! अध्यात्म...(11)...

नन्दौड़, दिनांक 25.07.2015, रात्रि 10.22

आत्मा की शुद्धता ही धर्म

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मंगलरायकृत 12 भावना-कहाँ गये चक्री.....)

केवल बाह्य क्रिया-काण्ड व रीति-रिवाजों से,
स्वर्ग-मोक्ष चाहते हैं रूढ़ि परम्पराओं से।

राग-द्वेष मोह ईर्ष्या व घृणा न छोड़ते,
फैशन-व्यसन भोगोपभोग को नहीं त्यागते।। (1)

ऐसे जीव नहीं जानते आत्मा परमात्मा,
ऐसे जीव होते हैं अज्ञानी बहिरात्मा।

जैसे कि विषधर सर्प त्यागे है काँचली,
नहीं त्याग करता है वह दंश जहरीली।। (2)

सत्य-तथ्य व आत्म तत्त्व को जाने ही बिना,
कोई देव को प्रसन्न करते ज्ञान के बिना।

कोई केवल शरीर दण्ड से, चाहते है मोक्ष,
आत्मा को पवित्र करने का, न होता लक्ष्य।। (3)

धर्म तो आत्म स्वभाव है, जो पावनता युक्त,
सत्य समता शांति क्षमा आर्जव युक्त।

आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र सहिष्णुता युक्त,
शुद्ध-बुद्ध व आनन्द चैतन्य संयुक्त।। (4)
नन्दौड़, दिनांक 16.08.2015, रात्रि 10.10

आत्मविस्मृति से संसार तो आत्मोपलब्धि ही मोक्ष

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : दुनिया चले न श्री राम के बिना....., अच्छा सिला दिया.....)

संसार न चले आत्मविस्मृति बिना, मुक्ति न मिले आत्मलब्धि के बिना।
राग द्वेष मोह बिना न आत्मविस्मृति, राग द्वेषादि क्षय से ही मुक्ति मिलती।। (1)

शरीर को आत्मा मानना आत्मविस्मृति, सत्ता सम्पत्ति (भोग) में ममत्व बुद्धि।
इसी से ही संसार में परिभ्रमण, इसी के विपरीत से ही मिले मोक्ष।। (2)

तन-मन-अक्ष (से) परे होता आत्मा/(मोक्ष), (अनंत) ज्ञान दर्शनमय शुद्ध स्व आत्मा।
आत्म उपलब्धि हेतु ही समस्त धर्म, इसी से विपरीत (होते) सभी अधर्म।। (3)

दान दया सेवा पूजा व्रत नियम (ध्यान), अहिंसा सत्यादि पाँचों ही यम।
तप त्याग समता, क्षमा मार्दव, आत्म उपलब्धि हेतु ही सभी कारण।। (4)

आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र बिना, मुक्ति न मिलती स्व की प्राप्ति बिना।
स्वयं को स्वयं द्वारा स्वयं में पाना, यही मोक्ष है 'कनक' स्व में (ही) रमना।। (5)
नन्दौड़, दिनांक 19.08.2015, प्रातः 9.45

भाव विशुद्धि धर्म तो भाव अशुद्धि अधर्म

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : कभी तो ये गुरुवर....., तुम दिल की.....)

भाव विशुद्धि है प्रधान कारण संवर निर्जरा व पुण्य-मोक्ष में।
भाव अशुद्धि है प्रधान कारण आस्रव बंध व पाप कर्मों में।।

राग द्वेष मोह काम क्रोध से होती है भाव की विशुद्धि।
नवकोटि से जो (होता है) ऐसा विशुद्ध, उसको मिलती है निश्चय से सिद्धि।।

इसी से विपरीत जो होता है जीव, उस की न होती है भाव विशुद्धि।
भले वह बाह्य में धर्म भी करे, उसे न मिलती है निश्चय से सिद्धि।।

जिसके भाव विशुद्ध होते उसे मिलती है आत्मिक शान्ति।

समता पूर्ण उसके होते भाव व्यवहार, उनसे न होती कभी अशांति।।

उनके भाव-व्यवहार (भले) अन्य न समझ पाते, तथापि वे न होते हैं पापी।
यथा पार्श्वनाथ व महावीर को, पापी जन मानते थे अज्ञानी पापी।।

कट्टर संकीर्ण व स्वार्थी ढोंगी जो, धार्मिक ये सब नहीं जानते/(मानते)।
किन्तु सच्चे धार्मिक जनों से, ईर्ष्या-द्वेष-घृणा भी करते/(उन्हें कष्ट भी देते है)।।

नन्दौड़, दिनांक 22.08.2015, अपराह्न 6.07

संदर्भ-

निश्चय व्यवहार हिंसा एवं अहिंसा

अयदाचारो समणो छस्सु वि कायेसु वधकरो त्ति मदो।
चरदि जदं जदि णिच्चं कमलं व जले णिरुवलेवो।। (218) (प्र.सार)

A Sramana of careless conduct is called murderer of the six (classes of) embodied beings; if he carefully practises (his course of conduct), he is forever uncontaminated like the lotus on water.

यहाँ यह भाव बताया गया है कि जो साधु शुद्धात्मा के अनुभव रूप शुद्धापयोग में परिणमन कर रहा है वह पृथ्वी आदि छह कायरूप जंतुओं से भरे हुए इस लोक में विचरता हुआ भी यद्यपि बाहर में कुछ द्रव्य हिंसा है तो भी उसके निश्चय हिंसा नहीं है। इस कारण सब तरह से प्रयत्न करके शुद्ध परमात्मा की भावना के बल से निश्चय हिंसा ही छोड़ने योग्य है।

समीक्षा-आचार्यश्री ने जो 217 न. गाथा में अंतरंग हिंसा एवं बहिरंग हिंसा का प्रतिपादन किया था उसी ही विषय को और अधिक विशद दृढ़ीकरण करने के लिए इस गाथा का प्रतिपादन किया है। जिस प्रकार जल में कमल होते हुए भी कमल में विशेष स्पर्श गुण के कारण जल उसमें लिप्त नहीं होता है उसी प्रकार अप्रमत्त भाव से युक्त मुनि जीवों से भरे संसाररूपी जलाशय में रहते हुए भी हिंसा-पाप से लिप्त नहीं रहता है क्योंकि निश्चय से भाव की दुष्टता ही हिंसा है, एवं भाव की शुद्धता ही अहिंसा है। वीरसेन स्वामी ने जयधवला में कहा भी है-

रत्तो वा दुट्ठो वा मूढो वा जं पउंजइ पओअं।
हिंसा वि तत्थ जायइ तम्हा सो हिंसओ होइ।। (41) जय धवला, पृ. 93

रागी, द्वेषी अथवा मोही पुरुष जो भी क्रिया करता है उसमें हिंसा अवश्य होती है और इसीलिये वह पुरुष हिंसक होता है तात्पर्य यह है कि रागादि भाव ही हिंसा के प्रयोजक है, उनके बिना केवल द्रव्य हिंसा मात्र से हिंसा नहीं होती है।

रागादीणमणुप्पा अहिंसकत्तं त्ति देसियं समए।
तेसिं चे उप्पत्ती हिंसेत्ति जिणेहि णिद्दिट्ठा।। (42)

रागादिक का नहीं उत्पन्न होना ही अहिंसकता है ऐसा जिनागम में उपदेश दिया हैं तथा उन्हीं रागादिक की उत्पत्ति ही हिंसा है। ऐसा जिनदेव ने निर्देश किया है।

अत्ता चेय अहिंसा अत्ता हिंसेत्ति णिच्छयो समए।
जो होइ अप्पमत्तो अहिंसओ हिंसओ इयरो।। (43)

समय अर्थात् जिनागम में ऐसा निश्चय किया गया है कि आत्मा ही अहिंसा है और आत्मा ही हिंसा है। उनमें जो प्रमाद रहित आत्मा है वह अहिंसक है तथा जो इतर अर्थात् प्रमाद सहित है वह हिंसक हैं।

अज्झवसिएण बंधो सत्ते मारेज्य माव मारेज्य।
एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स।। (44)

सत्व अर्थात् जीवों को मारो या मत मारो, बंध में जीवों को मारना या नहीं मारना प्रयोजक नहीं है, क्योंकि अध्यवसाय से अर्थात् रागादिरूप परिणामों से जीवों के बंध होता है। निश्चयनय की अपेक्षा यह बंध का सारभूत कथन समझना चाहिए।

ण य हिंसामेत्तेण य सावज्जेणावि हिंसओ होइ।
सुद्धस्स य संपत्ती अफला उत्ता जिणवरेहिं।। (48)

जीव केवल हिंसामात्र से हिंसक नहीं होता है, किन्तु सावद्य अर्थात् राग-द्वेषरूप परिणामों से ही हिंसक होता है, अतः राग-द्वेषादि से रहित शुद्ध परिणाम वाले जीव के जो कर्मों का आस्त्रव होता है वह फलरहित है ऐसा जिनवर ने कहा है।

णाणी कम्मस्स क्खयत्थमुट्ठिदो णोत्थिदो य हिंसाए।
जदइ असढं अहिंसत्थमप्पमत्तो अबहओ सो।। (49)

ज्ञानी पुरुष कर्म के क्षय के लिए प्रस्तुत रहता है, हिंसा के लिए नहीं और वह प्रमाद रहित होता हुआ सरल भाव से अहिंसा के लिए प्रयत्न करता है, इसलिये वह अबंधक अर्थात् अहिंसक है।

सक्कं परिहरियव्वं असक्कणिज्जम्मि णिम्ममा समणा।

तम्हा हिंसायदणे अपरिहरंते कथमहिंसा।। (50)

साधुजन, जो त्याग करने के लिए शक्य होता है उसके त्याग करने का प्रयत्न करते है और जो त्याग करने के लिए अशक्य होता है उसमें निर्मम होकर रहते हैं, इसलिये त्याग करने के लिए शक्य भी हिंसायतन के परिहार नहीं करने पर अहिंसा कैसे हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती है।

वत्थु पहुच्च तं पुण अज्झवसाणं ति भणइ ववहारो।

ण य वत्थुदो हु बंधो बंधो अज्झप्पजोएण।। (51)

वस्तु को निमित्त कर अध्यवसान अर्थात् विविध विकल्प होते हैं, ऐसा व्यवहारनय प्रतिपादन करता है, परन्तु वस्तु के निमित्त से बंध नहीं होता है, बंध तो अध्यवसान के संबंध से होता है।

पुण्णस्सासव भूदा अणुकंपा सुद्धओ व उवजोओ।

विवरीओ पावस्स हु आसव हेउं वियाणाहि।। (52)

अनुकंपा, शुद्ध योग और शुद्ध उपयोग ये पुण्यास्त्रव स्वरूप या पुण्यास्त्रव के कारण हैं तथा इनसे विपरीत अर्थात् अदया, अशुभ योग और अशुभ उपयोग ये पापास्त्रव के कारण है। इस प्रकार आस्त्रव के हेतु समझना चाहिए।

णव कोडिकम्म सुद्दो परदो पच्छा य संपदिय काले।

पर सुहदुःख णिमित्तं जइ बंधइ णत्थि णिव्वाणं।। (53)

जो पुरुष कर्म की नौ कोटि अर्थात् मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना से शुद्ध है, उसे भूत, भविष्यत और वर्तमान काल में यदि दूसरे के सुख और दुःख के निमित्त से बंध होने लगे तो किसी को भी निर्वाण प्राप्त नहीं हो सकेगा।

तित्थयरस्य विहारो लोअसुहो णेव तत्थ पुण्णफलो।

वयणं च दाणपूजारंभयरं तं ण लेवेइ।। (54)

तीर्थंकर का विहार संसार के लिए सुखकर है, परन्तु उससे तीर्थंकर को पुण्य रूप फल प्राप्त होता है ऐसा नहीं है तथा दान और पूजा आदि आरंभ के करने वाले वचन, उन्हें कर्मबंध से लिप्त नहीं करते है अर्थात् वे दान-पूजा आदि आरंभों का जो उपदेश देते है उससे भी उन्हें कर्मबंध नहीं होता है।

जदि सुद्धस्स वि बंधो होहिदि बाहिरय वत्थु जोएण।

णत्थि हु अहिंसओ णाम कोइ वाआदि वह हेइ।। (56)

''यदि बाह्य वस्तु के संयोग से शुद्ध जीव के भी कर्मों का बंध होने लगे तो कोई भी जीव अहिंसक नहीं हो सकता है, क्योंकि श्वास आदि के द्वारा सभी से वायुकायिक आदि जीवों का वध होता है।''

परम रहस्स मिसीणं समत्तगणिपिडय झरिद साराणं।
परिणामियं पमाणं णिच्छयमवलंब माणाणं।। (61)

समग्र द्वादशांग का प्रधान रूप से अवलम्बन न करने वाले निश्चयनयावलंबी, ऋषियों के संबंध में यह एक मूल तत्त्व है कि वे अपनी शुद्धाशुद्ध चित्त वृत्ति को ही प्रमाण मानते हैं।

वियोजयति चासुर्भि न च वधेन संयुज्यते।
शिवं च न परोपघात परूष स्मृते र्विद्यते।।
वधोपनयमभ्युपैति च परानिघ्नन्नपि।
त्वयाऽयमति दुर्गमः प्रशमहेतुरूद्योतितः।। (62)

कोई प्राणी दूसरे को प्राणों से वियुक्त करता है फिर भी वह वध से संयुक्त नहीं होता है तथा परोपघात से जिसकी स्मृति कठोर हो गई है, अर्थात् जो परोपघात का विचार करता है उसमें उपयुक्त है उसका कल्याण नहीं होता है तथा कोई दूसरे जीवों को नहीं मारता हुआ भी हिंसकपने को प्राप्त होता है। इस प्रकार हे जिन! तुमने यह अति गहन प्रशम का हेतु प्रकाशित किया है अर्थात् शांति का मार्ग बतलाया है।

महात्मा बुद्ध ने भी मानसिक अहिंसा को महत्त्व दिया है। यथा-

मनोपकोपं रक्खेय्य मनसा संवुतो सिया।
मनोदुच्चरितं हित्वा मनसा सुचरितं चरे।। (13) (पृ. 75 धम्मपद)

मानसिक दुराचार से बचे, मन से संयत रहे। मानसिक दुराचार को छोड़, मानसिक सदाचार का आचरण करें।

तू ही तेरा उत्थान व पतनकर्त्ता

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तू ही तेरा परम सत्य है....., कसमें-वादे.....)

तू ही तेरा उत्थानकर्त्ता व...पतनकर्त्ता भी तू ही...
तू ही तेरा शत्रु-मित्र व...भाई-बंधु भी तू ही...(ध्रुवपद)...

जब तू ही...स्व को जानेगा...मानेगा तथा पायेगा...
तब तेरा...उत्थान होगा...अन्यथा पतन होगा...तू ही तेरा...(1)...

तू ही चेतन...समता पूर्ण...ज्ञानानन्द भी तू ही...
इसे तू मानो...इसे (तू) जानो...तन्मय बन तू ही...तू ही तेरा...(2)...
राग-द्वेष...मोह त्यागो...त्यागो ईर्ष्या-तृष्णा व काम...
सत्य-समता...शान्ति पाओ...करो हे! ध्यान-अध्ययन...तू ही तेरा...(3)...
अपना-पराया...भेद-भाव त्यागो...सेवा हे! वीतरागता...
ख्याति-पूजा...लाभ त्यागो...सेवा निस्पृह शुचिता...तू ही तेरा...(4)...
इसी से तेरा...उत्थान होगा...आध्यात्मिकता भी यही...
इसी हेतु ही...'कनकनन्दी'...सतत ध्यावे तुझे ही...तू ही तेरा...(5)...
इस से भिन्न...अन्य सभी से...होगा पतन तेरा...
इसी हेतु ही...'कनकनन्दी'...अन्य से मोह छोड़ा...तू ही तेरा...(6)...

नन्दौड़, दिनांक 30.07.2015, वर्षावास स्थापना दिवस, प्रातः 8.55

स्वात्म-चिन्तन

परम श्रेष्ठ-ज्येष्ठ-प्राप्य योग्य : स्व-आत्मा

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की धड़कन....., देहाची तिजोरी.....)

परम श्रेष्ठ-ज्येष्ठ आत्म तत्त्व मेरा...तुम से श्रेष्ठ-ज्येष्ठ न अन्य...
तुम ही हो पावन तुम ही महान्...तुमसे मूल्यवान् न अन्य...(1)...
आकाश से भी तुम हो विशाल...अनंतानंत (अविभागी) प्रतिच्छेद युक्त...
आकाश में तो है अनंत प्रदेश...उससे अनंत गुणित तेरे ज्ञान क्षेत्र...(2)...
तुम में निहित है अनंत गुण-गण...ज्ञान-दर्शन व सुख-वीर्य...
अस्तित्व-वस्तुत्व-प्रमेयत्व विभुत्व...अगुरुलघु व अव्याबाधत्व...(3)...
स्वयंभू सनातन व सच्चिदानंद...सत्य-शिव-सुंदर भी तुम...
समता-अहिंसा क्षमा-निर्मलता...उदार-पावन भी हो तुम...(4)...
तुम ही हो प्रिय तुम ही हो श्रेय...तुम ही हो परम पिता...
तुम ही हो माता तुम ही सखा...तुम ही हो शाश्वत सुखदाता...(5)...
तुम ही हो साध्य तुम ही आराध्य...तुम ही हो लक्ष्य व उपलब्धि...
तुम ही सर्वस्व तुम ही हो मोक्ष...'कनक' चाहे तेरी (ही) उपलब्धि...(6)...

नन्दौड़, दिनांक 25.07.2015, चातुर्मास स्थापन की पूर्व रात्रि

लौकिक से परे व विपरीत भी है : आध्यात्मिक

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : शत-शत वंदन....., आत्मशक्ति से ओतप्रोत.....)

लौकिक से परे आध्यात्मिक, कथंचित् विपरीत भाव व्यवहार (भी)।
राग द्वेष मोह पक्षपात परे, परम पवित्र साम्य भाव ही।।

लौकिक जन तो सत्ता-संपत्ति में, करते ममत्व राग द्वेष भी।
तन-मन भाई-बंधु कुटुम्ब को, अपना मानते करते राग द्वेष भी।।

सत्ता-संपत्ति व प्रसिद्धि डिग्री से, करते स्व मूल्यांकन भी।
इसी की वृद्धि से स्व-वृद्धि, इसी की हानि से मानते स्व-हानि भी।।

भेागोपभोग में/(से) आनंद मानते, उसी हेतु होते प्रयत्नशील भी।
इसी हेतु करते अनेक पाप, अन्याय अत्याचार शोषण भी।।

आध्यात्मिक में यह सब कुछ न होता, इस से परे होते भाव-व्यवहार ही।
ज्ञान-वैराग्य समता शुचि सह, निस्पृह वीतराग आकिंचन्य भी।।

शरीर मन से परे है आध्यात्मिक, सत्ता-संपत्ति प्रसिद्धि परे भी।
अपना पराया भेद-भाव से परे, भोगोपभोग शत्रु-मित्र से भी।।

सामाजिक लौकिक नियम-कानून, रीति-रिवाज-परंपरा बंधन।
उच्च-नीच भेद-भाव पक्षपात परे, समता-शांति व वैराग्य सह।।

आत्मा में ही आत्मा के लिये, आत्मा द्वारा हर भाव-व्यवहार भी।
आत्मा द्वारा आत्मा का भोगोपभोग, आत्म वैभव में ही होता रमण भी।।

यह ही आध्यात्मिक (का) परम सत्य, यह ही परम धर्म, परम लक्ष्य।
अहिंसा आराधना साधना तप, 'कनकनन्दी' का यह परम लक्ष्य।।

संदर्भ-प्रवचनसार

जो संग तु मुइत्ता जाणादि उवओगमप्पगं सुद्धं।
तं णिस्संगं साहुं परमट्ठवियाणया विंति।। (131) स.सार

जो साधु बाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकार के सम्पूर्ण परिग्रह को छोड़कर अपने आप की आत्मा को दर्शन-ज्ञानोपयोग स्वरूप-शुद्ध अनुभव करता है। उसका परमार्थ स्वरूप जानने वाले गणधरादिक देव निर्ग्रन्थ साधु कहते हैं।

जो मोहं तु मुइत्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।
तं जिदमोहं साहु परमठ्ठवियाणया विंति।। (32)

जो पर पदार्थ में होने वाले मोह को छोड़कर अपने आप को केवल मात्र निर्विकल्प ज्ञानस्वभावमय अनुभव करता है। परमार्थ के जानने वाले तीर्थंकरादिक परमेष्ठी उसी साधु को मोह रहित कहते हैं।

चारित्रं भवति यतः समस्त सावद्ययोग परिहरणात्।
सकल कषाय विमुक्तं विशदमुदासीनमात्मरूपं तत्।। (39) पु. सिद्धि

समस्त पापयुक्त योगों के दूर करने से चारित्र होता है, वह चारित्र समस्त कषायों से रहित होता है, निर्मल होता है, राग-द्वेष रहित वीतराग होता है, वह चारित्र आत्मा का निज स्वरूप है।

अनुसरतां पदमेतत् करंविताचार नित्यनिरभिमुखा।
एकान्तविरतीरूपा भवति मुनीनामलौकिकी वृत्ति।। (16) पु. सिद्धि

इस पद को अनुसरण करने वाले अर्थात् रत्नत्रय को प्राप्त हुये मुनियों की पापमिश्रित आचार से सदा पराङ्मुख सर्वथा त्यागरूप लोक को अतिक्रम किये हुये वृत्ति होती है।

नन्दौड़, दिनांक 28.07.2015, अपराह्न 5.45

जीवों की दिव्य कहानी

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : भावे वन्दू तो अरिहन्त.....)

मैं सुना रहा हूँ वह कहानी...जिसमें राजा न हो..न हो रानी...
वह है आत्मा की शुद्ध कहानी...परमानन्द की दिव्य कहानी...(ध्रुव)...

जहाँ न होता जन्म व मरण...न होता है राग-द्वेष व काम...
क्षुधा-तृषा न होता रुग्ण...सच्चिदानन्द है अभिराम...(1)...

कोई न होता छोटा व बड़ा...धनी-गरीब व काला-गोरा...
शोषक-शोषित कोई न होता...मालिक-मजदूर कोई न होता...(2)...

अपना-पराया भी कोई न होते...भेद-भाव व शत्रु-मित्र न होते...
पापी-पुण्यशाली कोई न होते...दीन-हीन-अहंकारी न होते...(3)...

सभी समान सर्वथा ही होते...सत्य-शिव-सुन्दर ही होते...

शुद्ध-बुद्ध-आनंदमय होते...परम समतामय सभी होते...(4)...
यही हर जीव की शुद्ध कहानी...कर्मरहित आत्मा की कहानी...
यह ही जीवों की परम-अवस्था...इसकी प्राप्ति की 'कनक' की आस्था...(5)...
नन्दौड़, दिनांक 30.07.2015, वर्षायोग स्थापना दिवस, मध्याह्न 2.45

आत्मविश्वास व आत्मगौरव से विकासों का शुभारंभ

-आचार्य कनकनन्दी

(राग : छोटी-छोटी गैया.....)

आत्मविश्वास व आत्मगौरव से, होता है विकासों का शुभारंभ।
यथा बीज से वृक्ष का होता है, नींव से महल का भी शुभारंभ।। (1)

आत्मविश्वास व आत्मगौरव से, होता है स्वयं का ज्ञान-भान।
स्वयं की शक्ति का होता परिज्ञान, जिससे स्वयं का होता मूल्यांकन।। (2)

इसी के बल पर होता पुरुषार्थ, जिससे विकास में वृद्धि होती।
अन्यथा कोई भी विकास न होते, सांसारिक सुकार्य या मोक्ष-प्राप्ति।। (3)

सम्यग्दर्शन व ज्ञान चारित्र से, होती ही मोक्ष की उपलब्धि।
यह सूत्र है महान् व व्यापक, जिसे न समझ पाते मूढ़मती/(मिथ्यादृष्टि)।। (4)

सत्ता संपत्ति व प्रसिद्धि डिग्री में, करते हैं अहंकार तन-मन में/(से)।
जाति पंथ मत व भाषा राष्ट्र में/(से), करते हैं अहंकार ख्याति पूजा में/(से)।। (5)

इसी से परे अनंत शक्ति सम्पन्न, स्व-आत्मा को ही वे नहीं जानते।
सर्व शक्ति का अजस्र स्रोत आत्मा, उससे विपरीत (हो) कुकाम करते।। (6)

जिससे करते अन्याय अत्याचार, शोषण-मिलावट व भ्रष्टाचार।
ईर्ष्या द्वेष घृणा काम व मायाचार, हिंसा झूठ चोरी व व्यभिचार।। (7)

इनसे निवृत्त होने के लिए, करो है! आत्मविश्वास स्वाभिमान।
भौतिक उपलब्धियों का मान त्यागो, 'कनक' करे आत्मविश्वास व स्वाभिमान।। (8)

संदर्भ-

अपमानकरं कर्म येन दूरान्निषिध्यते।
स उच्चैश्चेतसां मानः परः स्वपरघातकः।। (56) ज्ञानार्णव
जिससे अपमान करने वाले कार्य दूर से ही छोड़ दिये जाये वही उच्चाशय

वालों का (प्रशस्तमान) आत्मगौरव-स्वाभिमान है। इसके अतिरिक्त जो अन्य मान है वे स्व-पर के घातक अर्थात् अप्रशस्त है।

क्व मानो नाम संसारे जन्तुव्रजविडम्बके।
यत्र प्राणी नृपो भूत्वा विष्ठामध्ये कृमिर्भवेत्।। (57) ज्ञाना

जीव मात्र की विडम्बना करने वाले इस संसार में मान नाम का पदार्थ है ही क्या? क्योंकि जिस संसार में राजा भी मरकर तत्काल विष्ठा में कृमि आदि कीट हो जाता हैं, और प्रत्यक्ष में भी देखा जाता है कि आज जो राजगद्दी पर विराजमान है वही कल राज्य रहित होकर रंक हो जाता है।

''अनन्त शक्ति स्वरूपोऽहम्'' - मेरे आत्मा में अनंत शक्ति है।
''अनंत बल स्वरूपोऽहम्'' - मैं अनंत बल सहित हूँ।
''बलमद रहितोऽहम्'' - मैं बलमद से रहित हूँ।
''ऋद्धिमद रहितोऽहम्'' - मैं ऋद्धिमद से रहित हूँ।
''त्रिजगद्वन्दितोऽहम्'' - मैं तीन जगत् के द्वारा वंदनीय हूँ।

हे! तीन जगत् से वंदनीय तू, जप ले अपना नाम रे,
जाति कुल अरु लिंग आदि में, नहीं तेरा नाम रे।
वीतराग सर्वज्ञ समदर्शी, गुण की पूजा होती है,
जो इनको तज देह को पूजे, समझो मिथ्यादृष्टि है।।

''रत्नत्रय वैभव सहितोऽहम्'' - मैं रत्नत्रय वैभव से सहित हूँ।
''रत्नत्रय ऋद्धि सहितोऽहम्'' - मैं रत्नत्रय ऋद्धि से सहित हूँ।
''प्रदर्शन परिणाम शून्योऽहम्'' - मैं प्रदर्शन-परिणाम से शून्य हूँ।

स्वाभिमान जागृत करो! मैं तीर्थंकरों के कुल का वंशज हूँ, उन्हीं के समान कर्म-काष्ठ को भस्मीभूत कर आत्म ज्योति का दर्शन करूँगा। मैं पंच-परमेष्ठी स्वरूप हूँ। (आ. स्याद्वादमती)

यः परमात्मा स एवाहं योऽहं स परमस्ततः।
अहमेव मयोपास्यो नान्यः कश्चिदितिस्थितिः।। (31) स.श.

परमार्थदृष्टि से जो परमात्मा है वह ही मैं हूँ तथा मैं हूँ वह परमशुद्ध परमात्मा है अतः वह मेरे द्वारा मुझसे मैं ही उपासना करने योग्य हूँ अन्य कोई पदार्थ उपासना करने योग्य नहीं है।

को णाम भडो कुलजो माणो थोलाइदूण जणमज्झे।

जुज्झे पलाइ आवडिदमेत्तओ चेव अरिभीदो।। (1513) भ.आ.

कौन कुलीन स्वाभिमानी शूरवीर मनुष्यों के बीच में अपनी भुजाओं को ठोककर ''मैं युद्ध में इस प्रकार शत्रुओं को हराऊँगा'' ऐसी घोषणा करके अपने सामने आये शत्रु से ही डरकर भागना पसंद करेगा।

थोलाइदूण पुव्वं माणी संतो परीसहादीहिं।

आवदिभित्तओ चेव को विसण्णो हवे साहु।। (1514) भ.आ.

उसी प्रकार पूर्व में भुजाओं को ठोककर कौन स्वाभिमानी साधु परीषह आदि के सम्मुख आते ही खेद खिन्न होगा।

समणस्स माणिणो संजदस्स णिहणगमणं पि होइ वरं।

ण य लज्जणयं कादुं कायरदादीणकिविणत्तं।। (1518)

उसी प्रकार स्वाभिमानी संयमी श्रमण का मर जाना श्रेष्ठ है किन्तु लज्जा जनक कार्य करना श्रेष्ठ नहीं है, कातरता-विपत्तियों से घबराना, दीनता कृपणता कि मैं कुछ भी नहीं कर सकता आदि श्रेष्ठ नहीं है।

असिवे दुब्भिक्खे वा कंतारे भएव आगाढे।

रोगाहिं व अभिभूदा कुलजा माणं ण विजहंति।। (1527)

भारी रोग में, दुर्भिक्ष में, भयानक वन में, अत्यंत प्रगाढ़ भय में तथा रोगों से ग्रस्त भी कुलीन पुरुष स्वाभिमान को नहीं छोड़ते।

ण पियंति सुरं ण य खंति गोयमं ण य पलंडुमादियं।

ण य कुव्वंति विकम्मं तहेव अण्णंवि लज्जणयं।। (1528)

वे मदिरापान नहीं करते, गोमांस नहीं खाते, लहसून प्याज आदि नहीं खाते, दूसरे का झूठा खाना आदि बुरे काम नहीं करते, इसी प्रकार अन्य भी लज्जास्पद काम नहीं करते।

किंपुण कुलगणसंघस्स जसमाणिणो लोयपूजिदा साधू।

माण पि जहिय काहंति विकम्मं सुजणलज्जणयं।। (1529)

तब कुल गण और संघ के यश सम्पादन का अहंकार करने वाले लोक पूजित साधु स्वाभिमान त्यागकर साधुजन के लिए लज्जा के योग्य बुरा कर्म करेंगे क्या? कभी नहीं करेंगे।

परम-सत्य को नहीं जान पाने के कारण

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की धड़कन.....)

राग द्वेष मोह से सहित जीव, नहीं जानते हैं सत्य असत्य।
इसी से चेतना विकृत होती, जिससे न जानते परम सत्य।।

इन्द्रिय मन व वचन से भी, परे होता है परम-सत्य।
वैज्ञानिक यंत्र व बुद्धि से, नहीं ज्ञात होता परम-सत्य।। (1)

परम सत्य तो होता है अनंत, द्रव्य-क्षेत्र-काल भाव से।
अनंतज्ञानी ही इसे जान पाते, राग-द्वेष-मोह रिक्त से।।

राग से जीव न जानते दोष, गुण भी न जानते द्वेष से।
मोह से न जानते गुण व दोष, जिससे जीव होते संक्लेश।। (2)

राग-द्वेष-मोह की ही परिणति, ईर्ष्या-घृणा व तृष्णा-काम।
शत्रु-मित्र व अपना-पराया, संकल्प-विकल्प व संक्लेश।।

इसी से जीव करते अनेक-पाप, हिंसा-झूठ व कुशील परिग्रह।
चोरी मिलावट-शोषण-भ्रष्टाचार, आक्रमण युद्ध व अत्याचार।। (3)

अनंतानंत कर्म इसी से बंधते, जिससे आत्मशक्ति होती विकृत।
जिससे भाव, ज्ञान होते विकृत, परम सत्य न होता ज्ञात।।

सर्वज्ञ ज्ञात यह सभी सत्य, अनुभव से भी होता ज्ञात।
सुज्ञान हेतु विभाव त्यागो, 'कनकनन्दी' सदा प्रयत्नरत।। (4)

नन्दौड़, दिनांक 30.07.2015 ''वर्षायोग स्थापना दिवस'', अपराह्न 6.10

विश्व को शांति की शिक्षा देने वाला भारत अशांत क्यों?

(पृथ्वी में शांति की दृष्टि से भारत का स्थान 143वाँ)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की....., सायोनारा.....)

विश्व भरण-पोषण करने से...आर्यावर्त से भारत हुआ...
ज्ञान-विज्ञान व शांति की...शिक्षा से विश्वगुरु भारत हुआ...(1)...

जैन-बौद्ध व हिन्दू धर्म ने...विश्व को ये अवदान दिया...
अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक व...आत्मा-परमात्मा का पाठ पढ़ाया...(2)...

इह-परलोक व मोक्ष सुख हेतु...विभिन्न उपायों का शोध (बोध) किया...
तन-मन-आत्मा के सुख हेतु...आयुर्वेद से ध्यान (तक) शोध किया...(3)...

अहिंसा-शाकाहार-अचौर्य-ब्रह्मचर्य...सत्य-अपरिग्रह व क्षमा सेवा से...
स्व-पर-विश्व शांति पाठ पढ़ाया...अनेकान्त-समन्वय दान से...(4)...

किन्तु अभी वह महान् देश...अपनी महानता/(संस्कृति) से दूर हो रहा...
जिससे स्वतंत्र भारत में भी...अनेक दोष उत्पन्न हुए...(5)...

भ्रष्टाचार-मिलावट-शोषण...दिखावा-आडम्बर-भेदभाव से...
ईर्ष्या-द्वेष-तृष्णा-निन्दा-कलह से...अशांत है देश भ्रष्टाचार से...(6)...

फैशन-व्यसन-बलात्कार-चोरी...रोग-गरीबी व आत्महत्या से...
गन्दगी-प्रदूषण-दुर्घटना से...अशांत है देश अव्यवस्था से...(7)...

शिक्षा-राजनीति-कानून-व्यापार...सर्विस तथा धर्म में...
नहीं है प्रायः न्याय-नीति...सत्य-सदाचार हर लोगों में...(8)...

जिसके कारण भारत अभी...शांति में भी पिछड़ा देश बना...
पृथ्वी के एक सौ बासठ (162) देशों में...एक सौ तैतालीसवाँ (143) स्थान बना...(9)...

केवल बाह्य सत्ता-संपत्ति-शिक्षा...तथाहि धर्म से न शांति मिलती...
शांति तो आत्मा का स्वभाव...जिससे अंतरंग (से) शांति मिलती...(10)...

इसी हेतु चाहिये सत्य-समता...शुचि सहिष्णुता व सन्तोष...
हर जीव इस हेतु प्रयास करे...'कनक' प्रयासरत भाव से...(11)...

नन्दौड़, दिनांक 01.08.2015, रात्रि 12.35

नोट : हाल ही में जारी ग्लोबल पीस इण्डेक्स (जी.पी.आई.) 2015 के मुताबिक शान्ति के मामले में दुनिया के 162 देशों में से भारत की पोजिशन 143वीं है, यानी देश में काफी अशान्ति है। दुनिया के टॉप सबसे शान्त 10 देश (1) आइसलैण्ड (2) डेनमार्क (3) ऑस्ट्रिया (4) न्यूजीलैण्ड (5) स्विट्जरलैण्ड (6) फिनलैण्ड (7) कनाड़ा (8) जापान (9) आस्ट्रेलिया (10) चेक गणराज्य।

(राज. पत्रिका, मी नेक्स्ट)

व्यापक ज्ञान बिन सही निर्णय नहीं

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति.....)

व्यापक ज्ञान बिना (कोई) निर्णय सही होना ही अति/(अत्यंत) कठिन/(दुर्लभ) है।
कूप में जन्म लेने वाले मण्डुक को, दिग्वलय/(पृथ्वी) का ज्ञान कठिन/(दुर्लभ) है।।1।।

सर्वज्ञ बिना कोई भी परम सत्य को न जान पाता है।
अनन्त अल्पज्ञ जीव भी, परम सत्य को न जान पाते है।।2।।

गणधर भी सर्वज्ञ (के) उपदेश का अनन्तवाँ भाग समझते है।
सर्वज्ञ भी स्वज्ञान का अनन्तवाँ भाग उपदेश कर सकते है।।3।।

अल्पज्ञ जीवों की क्षमता तो होती है अत्यंत ही कम।
अतएव अनंत ज्ञेयों को, समझने योग्य नहीं है ज्ञान।।4।।

अनुमान या कल्पना भी पूर्ण सही होना भी कठिन/(दुर्लभ) है।
वृक्ष के आकार के अनुसार फूल-फल के न आकार है।।5।।

बरगद आम जामुन इमली कठहल व लौकी पाठा है।
वृक्ष व फल-फूल के अनुपात से, अनुमान आदि न सही होते है।।6।।

तथाहि आकार के अनुसार शक्ति या गुण न होते समान।
सर्वज्ञ महावीर के शरीर के अनुपात से ना होता उनका ज्ञान।।7।।

दार्शनिक या वैज्ञानिक न्यायाधीश का भी ज्ञान न पूर्ण प्रमाण।
पूर्ण ज्ञान हेतु ही 'कनकनन्दी' बना है साधक श्रमण।।8।।

नन्दौड़, दिनांक 22.08.2015, रात्रि 10.10
(यह कविता मुनिश्री आध्यात्मनन्दी के कारण बनी।)

प्रशंसा पुण्य तो निन्दा पाप

(प्रशस्त गुणी-गुणी के स्मरण-अनुमोदना-कथन-प्रशंसा है तो इससे विपरीत निन्दा)

-आ. कनकनन्दी

(चाल : जय हनुमान ज्ञान गुण सागर....., तुम दिल की.....)

प्रशंसा व निन्दा के स्वरूप को जानो, प्रशंसा पुण्य तो निन्दा पाप जानो।

प्रशस्त गुण-गुणी (के) कथन प्रशंसा, इससे विपरीत कथन (है) होती निन्दा।। (1)

देवशास्त्रगुरु गुण-स्मरण-अनुमोदना, प्रमोद भाव से कथन होती प्रशंसा।
इसे ही कहते हैं पूजा-प्रार्थना, दर्शन-कीर्तन-स्तुति वन्दना।। (2)

ऐसा ही अन्य धार्मिक सज्जन गुणी के, गुण स्मरण-अनुमोदना व प्रशंसा।
इसे ही कहते हैं प्रमोद भावना, सेवाभावी दानी परोपकारी की अनुमोदना।। (3)

पंचाश्चर्य होते जो आहारदान में, सम्मान स्वागत होता समाज में।
प्रशस्तिपत्र पुरस्कारादि प्रदान, सब प्रशंसा के (होते) भेद विभिन्न।। (4)

प्रशंसाकर्त्ता का भाव (भी होता) प्रशस्त, ईर्ष्या द्वेष घृणा से रहित अन्तस।
इसी से होता पुण्य बन्धन, प्रशंसनीय व्यक्ति को (भी) मिलता प्रोत्साहन।। (5)

पुण्य-पाप भी होते नवकोटि से, मन-वच-काय व कृत-कारित से।
अनुमोदन सहित (होते) नव प्रकार, वज्रजंघ श्रीमती (के) आहारदान विचार।। (6)

आहारदाता दोनों भी मोक्ष पधारे, आहार अनुमोदक आठों ही मोक्ष सिधारे।
ऐसे ही अन्य सभी प्रशस्त कार्य को, अनुमोदना-प्रशंसा के फल ही मिले।। (7)

इसी से विपरीत निन्दा का फल, गुण-गुणी द्वेष से पाप प्रचुर।
सम्यक्त्व घात (होता) बंधता मोह, वाद-विवाद-संक्लेश/(निन्दा) कलह।। (8)

श्रीपाल को कुष्ट हुआ इसी पाप से, सात सौ मित्रों को (कुष्ट) हुआ इसी पाप से।
'पृष्ट माँस भक्षी' सम होते है निन्दक, स्वर्ग-मोक्ष पाते जो होते प्रशंसक।। (9)

सुधार हेतु (जो) गुरु दोष कहते, वह न निन्दा, बहु उपकारी होते।
निन्दा को त्यागो (निन्दा से) शिक्षा पाओ, 'कनकनन्दी' को निज आत्मा ही भाये ।। (10)

(भारतीयों की निन्दा-प्रवृत्ति व प्रशंसा को सही न समझने के कारण यह कविता बनी।)

सन्दर्भ-

सगणे व परगणे वा परपरिपवादं च मा करेज्जाह।
अच्चासादणविरदा होह सदा वज्जभीरु य।। (भ.आ.) 371

अपने गण में या दूसरे गण में दूसरों की निन्दा नहीं करनी चाहिए। अति आसादना से विरत रहो, सदा पाप से डरो।

आयासवेरभयदुक्खसोयलहुगत्तणाणि य करेइ।
परणिंदा वि हु पावा दोहग्गकरी सुयणवेसा।। (372)

पर निन्दा आयास, वैर, भय, दुःख, शोक और लघुता को करती है, पाप रूप है, दुर्भाग्य को लाती है और सज्जनों को अप्रिय है।

किच्चा परस्स णिदं जो अप्पाणं ठवेदुमिच्छेज्ज।
सो इच्छदि आरोग्गं परम्मि कडुओसहे पीए।। (373)

जो पर की निन्दा करके अपने को गुणी कहलाने की इच्छा करता है वह दूसरे के द्वारा कड़वी औषधि पीने पर अपनी निरोगता चाहता है अर्थात् जैसे दूसरे के औषधि पीने पर आप निरोग नहीं हो सकता है। वैसे ही दूसरे की निन्दा करके कोई स्वयं गुणी नहीं बन सकता।

दट्ठूण अण्णदोसं सप्पुरिसो लज्जिओ सयं होइ।
रक्खइ य सयं दोसंव तयं जणजंपणभएण।। (374)

सत्पुरुष दूसरों के दोष देखकर स्वयं लज्जित होता है। लोकापवाद के भय से वह अपनी तरह दूसरों के भी दोष को छिपाता है।

जदि धरिसणमेरिसयं करेदि सिस्सस्स चेव आयरिओ।
धिद्धि अपुट्ठधम्मो समणोत्ति भणेज्ज मिच्छजणो।। (496)

यदि आचार्य अपने शिष्यों को ही इस प्रकार दोष प्रकट करके दूषित करते हैं तो इन अपुष्ट धर्म वाले श्रमणों को धिक्कार है ऐसा मिथ्यादृष्टि लोग कहेंगे।

उच्चेवमादिदोसा ण होंति गुरुणो रहस्सधारिस्स।
पुट्ठेव अपुट्ठे वा अपरिस्साइस्स धीरस्स।। (497)

जो आचार्य पूछने पर अथवा बिना पूछे शिष्य के द्वारा प्रकट किये दोषों को दूसरों से नहीं कहता वह रहस्य को दूसरों से नहीं कहता वह रहस्य गुप्त रखने वाला अपरिश्रावी होता है और उसे ऊपर कहे दोष जरा भी नहीं छूते।

नन्दौड़, दिनांक 16.08.2015, प्रातः 8.52

आध्यात्मिक, दार्शनिक, अलौकिक गणित, मनोवैज्ञानिक व जीवन प्रबन्धन परक कविता

वर्तमान ही है शक्तिमान्

(वर्तमान से भावी विकास या विनाश होता)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : देहाची तिजोरी....., सायोनारा....., बिन गुरु.....)
अनन्त भूत बीत गये हैं...अनन्त भविष्यत् अभी भी बाकी...

अनन्त कार्य भी हो गये हैं...केवल आत्म-उपलब्धि ही है बाकी...(स्थायी)...

अनन्त कुकार्य भी हो गये हैं...अनन्त भी हो गई कुचर्चायें...
अभी तो केवल सुकार्य ही ध्येय...करना है केवल आत्मिक चर्यायें...
भूत न कभी भी होगा वर्तमान...भूत की सभी चिन्ता तो व्यर्थ...
भूत से शिक्षा लेकर ही अभी...भविष्य निर्माण हेतु हो पुरुषार्थ...(1)...

भूत की चिन्ता भूत की ही चर्चा...भूत की निन्दा या वाद-विवाद...
सभी ही व्यर्थ व अनर्थ कार्य...समय-शक्ति-श्रम होता बर्बाद...
वर्तमान से होता भविष्य निर्माण...वर्तमान है अतिमूल्यवान्/(शक्तिवान्)...
वर्तमान होता एक समय प्रमाण...कर्म नष्ट होते अनन्त प्रमाण...(2)...

व्यर्थ चिन्तन व कुकार्य से भी...अनन्त पाप कर्मों का होता बन्धन...
अतएव वर्तमान समय ही होता...भावी निर्माण या पतन कारण...
इसीलिये महावीर ने भी कहा...''गोयम एक समय पमायेण न मुक्कउ''...
''अप्रमाद ही है अमृत पदवी''...''प्रमाद ही है मृत्यु की पदवीं''...(3)...

स्व-समय ही है शुद्धात्म तत्त्व...पर समय ही होता है बन्ध तत्त्व...
अतः ही है 'कनकनन्दी' सदा...चाहता स्व-समयरूपी आत्म तत्त्व...(4)...

नन्दौड़, दिनांक 15.08.2015, रात्रि 8.47

यथार्थ सत्य-तथ्य व ढोंग-पाखण्ड-आडम्बर

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छू लेने दो नाजुक होंठों को.....)

शुद्ध नहीं निज भावना...धार्मिक हुए तो क्या हुए!?...
जाना नहीं निज आतमा...ज्ञानी हुए तो क्या हुए!?...(टेक)...

समता नहीं है भाव में...श्रमण/(साधु) हुए तो क्या हुए!?...
तृष्णा की कमी नहीं हुई...तपस्वी हुए तो क्या हुए!?...
पूज्य के गुण अपनाते नहीं...पूजा करने से क्या लाभ है!?...(1)...

शोषण-अहंकार न कम हुआ...दान करने से क्या लाभ है!?...
ग्राम/(नगर) में तो धर्म नहीं करते...तीर्थ यात्रा से क्या लाभ है!?...
पावन भाव-व्यवहार नहीं...पर्व मनाने से क्या लाभ है!?...(2)...

दान-दया-सेवा नहीं करते...धार्मिक ढोंग से क्या लाभ है!?...
संस्कार-सदाचार रिक्त होते...शिक्षित होने से क्या लाभ है!?...
प्रगतिशील-उदार नहीं बने...आधुनिक होने से क्या लाभ है!?...(3)...

राष्ट्र की सेवा तो नहीं करते...नेता बनने से क्या लाभ है!?...
सत्यनिष्ठा व दया नहीं...न्यायाधीश होने से क्या लाभ है!?...
निःस्वार्थ भाव से सेवा नहीं...(सामाजिक) कार्यकर्त्ता हुए तो क्या हुए!?...(4)...

गौरवशील भाव-व्यवहार नहीं...गुरु होने से क्या लाभ है!?...
विनम्र-गुणग्राही-योग्य नहीं...शिष्य/(छात्र) होने से क्या लाभ है!?...
निःस्वार्थ भावना भक्ति नहीं...भक्त होने से क्या लाभ है!?...(5)...

परम सत्य को जाना नहीं...वैज्ञानिक हुए तो क्या हुए!?...
आत्मा का दर्शन तो किया नहीं...दार्शनिक हुए तो क्या हुए!?...
मननशील व उदार नहीं...मानव हुए तो क्या हुए!?...(6)...

नैतिक गुण-कोमलता नहीं...कलाकार/(अभिनेता) हुए तो क्या हुए!?...
शान्ति-संतुष्टि व न्याय नहीं...धनी/(उद्योगपति) हुए तो क्या हुए!?...
'कनक' ने संक्षिप्त वर्णन किया...अनुकरण बिना क्या लाभ है!?...(7)...

नन्दौड़, दिनांक 21.08.2015, रात्रि 9.50

यथार्थ सत्य-तथ्य व ढोंग पाखण्ड आडम्बर

-आ. कनकनन्दी

(जेवु हे ऐवु हांसु तथ्य अने ढोग, पाखण्ड आडम्बर) (वागड़ी बोली में रूपान्तरण)

-मुनिश्री आध्यात्मनन्दी

(राग : .....)

साफ नती जेणी भावना
आपड़ी आतमा ने जाणी नती
समता नो भाव जेणा में नती,
लालस नी कमी जेमा थइ नती,
ताजा गुणं ने अपणावता नती,

धार्मिक बण्या तो हूं थयु।
ज्ञानी थया तो हूं थयु।। स्थायी
मुणि बण्या तो हूं थयु।
तपस्वी थया तो हूं थयु।
पूजा करवा थकी हूं फायदो।।

साफ नती जेणी भावना...(1)

कम न करया शोषण ने घमंड,
दान करवा थकी हूं फायदो।
गाम में तो धरम करता नती,
जात्रा करी ने हूं फायदो।
असल भाव ने वेवार नती,
तेवार मनावी ने हूं फायदो।।
साफ नती जेणी भावना...(2)

दान दया सेवा तो करता नती,
धार्मिक ढोंग करीने हूं फायदो।
उदार प्रगतिशील तमे बण्या नती,
आधुनिक बणी ने हूं फायदो।
संस्कार सदाचार तममे नती,
भणाई करवा थकी हूं फायदो।।
साफ नती जेणी भावना...(3)

देश नी साकरी तो करता नती,
नेता बणवा थकी हूं फायदो।
सत्य निष्ठा ने दया तममे नती,
जज साब बणिने हूं फायदो।
निःस्वार्थ भाव थी सेवा न करी,
(सामाजिक) काम करता बणी ने हूं फायदो।।
साफ नती जेणी भावना...(4)

गौरव नो भाव वेवार नती,
गुरु बणिने हूं फायदो।
विनम्र गुणग्राही योग्य नती,
चेला बणिने हूं फायदो।
सवारथ वगर भक्ति भाव नती,
भक्त बणिने हूं फायदो।।
साफ नती जेणी भावना...(5)

परम सत्य तमे जाणता नती,
वैज्ञानिक थई ने हूं फायदो।
आतमा ना दर्शन तो थया नती,
दार्शनिक थई ने हूं फायदो।
मननशील उदार भाव नती,
मनक थई ने हूं फायदो।।
साफ नती जेणी भावना...(6)

नैतिक गुण कोमल भाव नती,
कलाकार बणिने हूं फायदो।
शांति संतोष ने न्याय नती,
धनवारो बणिने हूं फायदो।
थोड़ा में घणु कनक गुरु लख्यु,
पालन न करयु तो हूं फायदो।।
साफ नती जेणी भावना...(7)

अन्य जीवों में भी होते हैं मनुष्य के समान अनेक दुर्गुण व सुगुण

(तिर्यंच-नारकी एवं देव के सुगुण एवं दुर्गुण)

-आ. कनकनन्दी

(चाल : क्या मिलिये ऐसे लोगों से....., सायोनारा.....)

मनुष्य के सम सुगुण-दुर्गुण, होते हैं मनुष्य इतर प्राणी में।
पशु-पक्षी कीट-पतंग से लेकर, एकेन्द्रिय नारकी देवों में।। (1)

वे भी जन्म-मरण करते, सुख-दुःखों को भी भोगते।
क्रोध-मान-माया-लोभ करते, आस्रव-बंध भी करते।। (2)

मोह काम व हास्य रति अरति, भय जुगुप्सा भी करते।
हिंसा-झूठ-परिग्रह-चोरी, काम भोग भी करते।। (3)

मार्गणा गुणस्थान सहित, पुण्य-पाप युक्त भी होते।
मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर, पंचम गुणस्थान/(श्रावक) तक होते।। (4)

कुमति-कुश्रुत व कुअवधि, सुमति सुश्रुत सुअवधि भी (ज्ञानी) होते।
मिथ्यादृष्टि तो कुज्ञानी ही होते, सुदृष्टि सुज्ञानी ही होते।। (5)

भव्य-अभव्य कुधर्मी-सुधर्मी, शाकाहारी व माँसाहारी होते।
शांत सरल व दुष्ट दुराचारी, फैशनी-व्यसनी भी होते।। (6)

शोषक-शोषित मालिक-मजदूर, सबल-दुर्बल भी होते।
सामाजिक व असामाजिक, प्रमुख व गौण भी होते।। (7)

भूख-प्यास सर्दी-गर्मी, रोग बुढ़ापा भी वे भोगते।
आलस्य-निद्रा व प्रमाद सहित, यथायोग्य वे भी होते।। (8)

उत्थान-पतन भी उनका होता, गुणस्थान-मार्गणा स्थानों में।
कुछ भव्य जीव तो क्रम विकास कर, मोक्ष पाते मनुष्य भव में।। (9)

यह सब वर्णन जैन धर्म में, अत्यंत विस्तार से हुआ है।
अन्य धर्म में भी यत्किंचित्, विज्ञान में थोड़ा हुआ है।। (10)

सभी जीव ही सुख चाहते, दुःख से संतापित होते।
इसलिए ही किसी भी जीव को, दुःख देना अधर्म होता है।। (11)

मैंने भी मेरे अनेक ग्रंथों में, विस्तार से वर्णन किया।
संक्षिप्त परिज्ञान हेतु 'कनक', काव्य में यहाँ है लिखा।। (12)

इस विषय के विशेष परिज्ञान हेतु आ. कनकनन्दी जी कृत (1) सूक्ष्म जीव विज्ञान से लेकर शुद्ध जीव विज्ञान तक (2) स्वतंत्रता के सूत्र (3) विश्व-विज्ञान रहस्य (4) मानव इतिहास व मानव विज्ञान आदि कृतियों का अध्ययन करें।

नन्दौड़, दिनांक 26.08.2015, रात्रि 9.15

स्वभाव चिन्तन-रमण से स्वभाव लाभ

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : सायोनारा....., क्या मिलिये.....)
अति महान् अति पावन है, मेरा शुद्ध आत्मा।
प्रिय-श्रेय व श्रेष्ठ-ज्येष्ठ है, मेरा निज आत्मा।।

मेरा आत्मा है शुद्ध-बुद्ध व, सत्य शिव सुन्दर।
सच्चिदानन्द व परमानन्द, अनन्त गुणों का ईश्वर।।

स्वयंभू सनातन अनादि अनिधन, अनन्त गुण पर्याय सहित।
अस्तित्व वस्तुत्व प्रमेयत्व व, अगुरुलघु गुण सहित।। (1)

तनमन इन्द्रियों से रहित (मैं) हूँ, द्रव्य भाव नोकर्म रहित (भी)।
जन्म जरा मरण रूजा रहित, व्यवहार से ये सब सहित भी।।

राग द्वेष मोह मेरा विभाव भाव, जिससे बना हूँ (मैं) संसारी।
विभाव भाव न मेरा स्वभाव, उसके नाश से (मैं) अविकारी।। (2)

मेरे द्वारा मैं ही प्राप्य मेरी साधना से ही मेरे अन्दर।
अन्य द्रव्य क्षेत्र काल आदि, बाह्य निमित्त से व्यवहार।।

स्वभाव में मेरे रहने से, विभाव भाव होते विनाश।
स्वभाव चिन्तन व रमण द्वारा, 'कनक' चाहे आत्म निवास।। (3)

नन्दौड़, दिनांक 27.08.2015, मध्याह्न 2.45

मैं (आत्मा) व शरीर में भिन्नता

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : जय हनुमान ज्ञान गुण....., बिन गुरु ज्ञान नहीं है.....)

मैं (आत्मा)	**देह (पर द्रव्य)**
मैं हूँ चिन्मय अमूर्त रूप...	देह तो अचेतन मूर्तिक रूप...
मैं तो अविनाशी ज्ञान स्वरूप...	देह तो विनाशी जड़ स्वरूप...(1)...
मैं हूँ सनातन स्वयंभू रूप...	देह तो नाशवान् अन्य से उपज...
सत्य-शिव-सुन्दर मेरा स्वरूप...	देह तो अशाश्वत विकृत रूप...(2)...
जन्म-जरा-मृत्यु रहित रूप...	देह तो जरा-मृत्यु सहित रूप...
दुःख-शोक-रोग रहित रूप...	देह तो दुःख-शोक-रोग सहित...(3)...
भूख-प्यास-संताप शून्य रूप...	देह तो भूख-प्यास-संताप युक्त...
सप्त धातु-मल रहित रूप...	देह तो सप्त धातु-मल सहित...(4)...
उपसर्ग-परीषह रहित रूप...	देह तो उपसर्ग-परीषह सहित...
तन-मन-इन्द्रिय रहित रूप...	देह तो तन-मन-इन्द्रिय सहित...(5)...
द्रव्य-भाव-नोकर्म रहित रूप...	देह तो द्रव्य-भाव-नोकर्म सहित...
अनंत आत्म वैभव सहित...	तन से रहित 'कनक' चिन्मय रूप...(6)...
ऐसी श्रद्धा-प्रज्ञा जिसे होती...	उसको निश्चय से मुक्ति मिलती...
ज्ञान-ध्यान व शुचि समता से...	विदेही होकर चिन्मय होते...(7)...

नन्दौड़, दिनांक 21.08.2015, प्रातः 8.37

प्राथमिक धार्मिक-सम्यग्दृष्टि का स्वरूप

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : सायोनारा.....)

सम्यग्दृष्टि के स्वरूप को जानो, प्राथमिक धार्मिक के ये लक्षण मानो।
इसके बिना कोई न होता धार्मिक, धर्म तो आत्मा के गुण सम्यक्।। (1)

आत्म श्रद्धानमय होता आत्मविश्वास, तदनुकूल होता है सत्य विश्वास।
सत्य-तथ्य पूर्ण होता है सुज्ञान, आत्मोपलब्धि ही होता परम ध्येय।। (2)

स्वयं को मानता है सच्चिदानंद, तन-मन-इन्द्रिय से रिक्त ज्ञानानन्द।
परम सत्य को ही मानता यथार्थ सत्य, लौकिक व्यवहार/(सत्य) को माने व्यवहार सत्य।। (3)

सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का (होता है) भक्त, श्रद्धान करता द्रव्य-तत्त्व-पदार्थ।
मिथ्यात्व अनंतानुबंधी पर पाता विजय, प्रशम अनुकम्पा संवेग आस्तिक्य सह।। (4)
सप्तभय-व्यसन मल-पच्चीस रिक्त, संसार शरीर व भोग से विरक्त।
अष्ट दोष रहित व अष्ट गुण सहित, अष्ट मद व तीन मूढ़ता रहित।। (5)
न्याय नीति व सदाचार युक्त, अन्याय-अत्याचार-शोषण रहित।
सनम्र गुणग्राही उदार चित्त युक्त, 'कनक' वर्णन किया काव्य में संक्षिप्त।। (6)

नन्दौड़, दिनांक 26.08.2015, रात्रि 10.30

सन्दर्भ-

सम्यग्दृष्टि कैसा होता है?

भय-वसण-मल-विवज्जिय, संसार-सरीर-भोग-णिव्विण्णो।
अट्ठगुणंग-समग्गो, दंसणसुद्धो हु पंचगुरुभत्तो।।5।। रयणसार

अन्वयार्थ-(दंसणसुद्धो) निर्दोष सम्यग्दर्शन का धारक/सम्यग्दृष्टि (हु) वस्तुतः (भय-वसण-मल-विवज्जिय) भय-व्यसन और मलों से रहित होता है (संसार-सरीर-भोग-णिव्विण्णो) संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होता (अट्ठगुणंग-समग्गो) अष्टांग गुणों से युक्त/पूर्ण (पंचगुरुभत्तो) पंचगुरु/पंच परमेष्ठी का भक्त होता है।

सात भय-1. इहलोक भय, 2. परलोक भय, 3. वेदना भय, 4. मरण भय, 5. आकस्मिक भय, 6. अरक्षा, 7. अगुप्ति भय।

सात व्यसन-1. जुआ खेलना, 2. माँस खाना, 3. सुरापान, 4. शिकार करना, 5. वेश्यागमन, 6. चोरी करना और 7. परस्त्री सेवन।

25 मल दोष-8 शंकादि दोष, 8 मद, 6 अनायतन और 3 मूढ़ता।

8 शंकादि दोष-1. शंका, 2. कांक्षा, 3. विचिकित्सा, 4. मूढ़दृष्टि, 5. अनुपगूहन, 6. अस्थितिकरण, 7. अवात्सल्य, 8. अप्रभावना।

8 मद-1. ज्ञान मद, 2. पूजा/आज्ञा/प्रतिष्ठा मद, 3. कुल मद, 4. जातिमद, 5. बल/शक्ति मद, 6. ऋद्धि/विभूति/संयम/ऐश्वर्य मद, 7. तप मद, 8. शरीर/रूप मद।

6 अनायतन-कुगुरु, कुदेव, कुधर्म और तीनों के सेवक।

3 मूढ़ता-1. देवमूढ़ता, 2. गुरुमूढ़ता और 3. लोकमूढ़ता।

आठ गुण-1. निःशंकित, 2. निःकांक्षित, 3. निर्विचिकित्सा, 4. अमूढ़दृष्टि, 5. उपगूहन, 6. स्थितिकरण, 7. वात्सल्य, 8. प्रभावना।

सम्यग्दृष्टि को दुःख कहाँ?

णिय-सुद्धप्पणुरत्तो, बहिरप्पा, वत्थ-वज्जिओ णाणी।
जिण-मुणि-धम्मं मण्णइ, गय-दुक्खो होइ सद्दिट्ठी।।6।।

अर्थ-जो विचारशील/विवेकी/ज्ञानी अपने शुद्ध आत्मा में अनुरक्त है, बहिरात्मा अवस्था से रहित है, जिनेन्द्र देव, निर्ग्रंथ गुरु व दयामयी धर्म को मानता है वह सम्यग्दृष्टि है, दुःखों से रहित होता है।

44 दोष रहित सम्यग्दृष्टि

मय-मूढ-मणायदणं, संकाइ-वसण भयमईयारं।
जेसिं चउदालेदो, ण संति ते होंति सद्दिट्ठी।।7।।

अर्थ-जिन जीवों में आठ मद, तीन मूढ़ता, छः अनायतन, शंका आदि आठ दोष, सात व्यसन, सात भय और पाँच अतीचार ये 44 दोष नहीं होते है, वे सम्यग्दृष्टि होते हैं। 8+3+6+8+7+7+5=44.

पाँच अतीचार-1. शंका, 2. कांक्षा, 3. विचिकित्सा, 4. अन्यदृष्टि प्रशंसा, 5. अन्यदृष्टि संस्तव। (शेष दोषों के नाम गाथा में देखिये)।

प्रशंसा-प्रशंसा मन से होती है। **संस्तव**-संस्तव वचन से होता है।

77 गुण व 53 क्रिया युक्त होते हैं श्रावक

-आ. कनकनन्दी

(चाल : सायोनारा....., तुम दिल की धड़कन.....)

सच्चे श्रावक के स्वरूप को जानो, पंचम गुणस्थानवर्ती व्रती को मानो।
प्रथम प्रतिमा से ऐल्लक तक जानो, श्रद्धा विवेक व क्रिया युक्त मानो।। (1)

अप्रत्याख्यान क्रोधादि रहित, अष्ट मूलगुण (बारह) उत्तर गुण युक्त।
सप्त व्यसन सप्त भय रहित, पच्चीस मल दोष से विवर्जित।। (2)

सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के भक्त, अतिचार रहित वैराग्य युक्त।
ये (77) सतत्तर श्रावक के गुण, मोक्षमार्ग रत है आगम प्रमाण।। (3)

त्रेपन (53) क्रिया युक्त होता श्रावक, अष्ट मूलगुण बारह व्रत संयुक्त।
बारह तप (12) ग्यारह (11) प्रतिमा युक्त, चार प्रकार के दान सहित।। (4)

इन से रहित न होता श्रावक, श्रावक धर्म पाले (सो) होता श्रावक।

श्रावकाचार में (यह) हुआ वर्णन, संक्षिप्त में कनक (यहाँ) किया वर्णन।। (5)

नन्दौड़, दिनांक 27.08.2015, रात्रि 1.50

सन्दर्भ-

77 गुणों सहित सम्यग्दृष्टि श्रावक...

उहयगुण-वसण-भय-मल-वेरग्गाइचार-भक्तिविग्घं वा।

एदे सत्तत्तरिया, दंसण-सावय-गुणा भणिया।।8।।

अर्थ-आठ मूलगुण, बारह उत्तरगुण ऐसे दोनों गुण, सात व्यसन, सात भय, पच्चीस मल-दोष से रहित, वैराग्य युक्त, अतिचार रहित और देव-शास्त्र-गुरु में निर्विघ्न भक्ति ये सतत्तर सम्यग्दृष्टि श्रावक के गुण कहे गये हैं।

आठ मूलगुण-(अ) 1. मद्यत्याग, 2. मधुत्याग, 3. माँसत्याग, 4. बड़, 5. पीपल, 6. पाकर, 7. ऊमर और 8. कटुम्बर (अंजीर) इन 5 फलों का त्याग अर्थात् 3 मकार व 5 उदुंबर फलों के खाने का त्याग।

(ब) पाँच अणुव्रत-अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्यणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत, परिग्रहपरिमाणाणुव्रत का पालन तथा तीन मकार-मद्य, माँस, मधु का त्याग=8 मूलगुणों का पालन। (समन्त. आ.)

(स) मद्य-माँस-मधु का त्याग, रात्रि भोजन त्याग, 5 उदुम्बर फलों का त्याग, पंच-परमेष्ठी को नमस्कार, जीव दया और जल छानना। 8 मूलगुण (पं. आशाधरजी)

12 उत्तरगुण-5 अणुव्रत, 3 गुणव्रत और 4 शिक्षाव्रत।

5 अणुव्रत-1. अहिंसाणुव्रत, 2. सत्याणुव्रत, 3. अचौर्याणुव्रत, 4. ब्रह्मचर्याणुव्रत, 5. परिग्रहपरिमाण अणुव्रत।

3 गुणव्रत-दिग्व्रत, अनर्थदण्डव्रत, भोगोपभोगपरिमाण।

4 शिक्षाव्रत-1. देशव्रत, 2. सामायिक, 3. प्रोषधोषवास, 4. वैय्यावृत्ति।

(समन्तभद्रआचार्य विरचित रत्नकरंडश्रा. से)

5 अणुव्रत-अहिंसा आदि।

3 गुणव्रत-दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्डव्रत।

4 शिक्षाव्रत-सामायिक, प्रोषधोपवास, उपभोगपरिभोगपरिमाण व्रत और अतिथिसंविभाग।

(श्री उमास्वामी आ. विरचित त.सू.अ. 7 सू. 21)

12 भावनाएँ-1. अनित्य, 2. अशरण, 3. संसार, 4. एकत्व, 5. अन्यत्व,

6. अशुचि, 7. आस्रव, 8. संवर, 9. निर्जरा, 10. लोक, 11. धर्म, 12. बोधिदुर्लभ।

1. शंका, 2. कांक्षा, 3. विचिकित्सा, 4. अन्यदृष्टि प्रशंसा, 5. अन्यदृष्टि संस्तव।

(शेष गुणों के नाम गाथा 5 में देखिये)

इस प्रकार 8+12+7+7+25+12+5+1=77 सम्यग्दृष्टि श्रावक के गुण।

श्रावक की त्रेपन क्रिया

गुण-वय-तव-सम-पडिमा-दाणं-जलगालणं-अणत्थमिदं।

दंसण-णाण चरित्तं, किरिया तेवण्ण सावया भणिया।।149।।

अर्थ-8 मूलगुण-बड़, पीपल, पाकर, ऊमर, कठूमर, मद्य, माँस, मधु=5 उदुम्बर का त्याग करना।

12 व्रत-5 अणुव्रत-1. अहिंसाणुव्रत, 2. सत्याणुव्रत, 3. अचौर्याणुव्रत, 4. ब्रह्मचर्याणुव्रत और 4 परिग्रहपरिमाणाणुव्रत।

3 गुणव्रत-1. दिग्व्रत, 2. देशव्रत, 3. अनर्थदंडव्रत।

4 शिक्षाव्रत-1. सामायिक, 2. प्रोषधोपवास, 3. भोगोपभोगपरिमाण और 4. अतिथिसंविभाग। (5+3+4=12)

12 तप-6 अंतरंग तप-1. प्रायश्चित्त, 2. विनय, 3. वैय्यावृत्य, 4. स्वाध्याय, 5. व्युत्सर्ग और 6. ध्यान।

6 बहिरंग तप-1. अनशन, 2. ऊनोदर, 3. वृत्तिपरिसंख्यान, 4. रस-परित्याग, 5. विवक्तशय्यासन, 6. कायक्लेश।

हिंसा व अहिंसा का व्यापक स्वरूप

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की धड़कन.....)

आत्म परिणाम की हिंसा से...होती है हिंसा निश्चय से...
जीव मरे या नहीं मरे...हिंसा कहा है जिनागम में...(स्थायी)...

क्रोध-मान-माया-लोभ व...मोह-काम से होती आत्म हिंसा/(भाव हिंसा/आत्महत्या)...
हिंसा चोरी व असत्य परिग्रह...मैथुन भाव से होती आत्म हिंसा...

फैशन-व्यसन व मिलावट शोषण...भ्रष्टाचार से होती भाव हिंसा/(आत्म हिंसा)...
निन्दा चुगली वाद-विवाद से भी...होती है निश्चय से हिंसा...(1)...

संकीर्ण कट्टर व अनुदारता से भी...होती है निश्चय से हिंसा...
पक्षपात व हठग्राहिता से भी...होती है निश्चय से हिंसा...

उद्दण्ड उत्श्रृंखल व प्रमाद...आलस्य से भी होती भाव हिंसा...
इस से विपरीत समता-शांति व...आत्मविशुद्धि से भाव अहिंसा...(2)...

भाव हिंसा सहित जब होती है...अन्य जीवों की हिंसा...
वह होती है द्रव्य हिंसा...अन्य जीवों के दश प्राणों की हिंसा...

भाव अहिंसा से द्रव्य हिंसा भी...कम से कम ही होती जाती...
पूर्ण भाव अहिंसा से मुक्ति की...उपलब्धि भी हो जाती...(3)...

संदर्भ-

आत्मपरिणामहिंसन् हेतुत्वात् सर्वमेव हिंसैतत्।
अनृतवचनादिकेवलमुदाहृतं शिष्यबोधाय।। (42) पुरु-सिद्धि

आत्मा के परिणामों की हिंसा होने के कारण से यह सब हिंसा ही है; असत्य वचनादि केवल शिष्यों को बोध करने के लिए कहे गये हैं।

यत्खलु कषाययोगात् प्राणानां द्रव्यभाव रूपाणाम्।
व्यपरोपणस्य करणं सुनिश्चिता भवति सा हिंसा।। (43)

निश्चय करके कषाय सहित योगों से द्रव्य और भाव रूप प्राणों को जो नष्ट करना है, वह निश्चित रूप से हिंसा होती है।

मरदु व जियदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा।
पयदस्स णत्थि बंधो हिंसामेत्तेण समिदस्स।। (217) प्रव. सार

बाह्य में दूसरे जीव का मरण हो या न हो, जब कोई निर्विकार स्वसंवेदन रूप प्रयत्न से रहित है तब उसके निश्चय शुद्ध चैतन्य प्राण का घात होने से निश्चय हिंसा होती है। जो कोई भले प्रकार अपने शुद्धात्म स्वभाव में लीन है, अर्थात् निश्चय समिति का पालन कर रहा है तथा व्यवहार में ईर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेपण, प्रतिष्ठापना इन पाँच समितियों में सावधान है, अंतरंग-बहिरंग प्रयत्नवान् है, प्रमादी नहीं है, उसके बंध नहीं होता है।

यहाँ यह भाव है कि अपने आत्म स्वभाव रूप निश्चय प्राण का विनाश करने वाली रागादि परिणति निश्चय हिंसा कही जाती है। रागादिक उत्पन्न करने के लिए बाहरी निमित्त रूप जो परजीव का घात है सो व्यवहार हिंसा है, ऐसे दो प्रकार की हिंसा

जाननी चाहिए, किन्तु विशेष यह है कि बाहरी हिंसा हो वा न हो जब आत्म स्वभाव रूप निश्चय प्राण का घात होगा तब निश्चय हिंसा ही मुख्य है।

नन्दौड़, दिनांक 19.08.2015, अपराह्न

''द्रव्य हिंसक कथंचित् अहिंसक किन्तु परिग्रहधारी निश्चय से हिंसक''

(द्रव्य हिंसा पाप हो या न हो किन्तु परिग्रह अवश्य महापाप)

-आ. कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की धड़कन.....)

हिंसा अहिंसा का स्वरूप जानो, पन्द्रह प्रमाद को हिंसा ही मानो।
अंतरंग बहिरंग परिग्रह चौबीस, ये सब हिंसा के ही सही स्वरूप।। (1)

क्रोध मान माया लोभ (व) मिथ्यात्व, पुंवेद स्त्रीवेद व नपुंसक वेद।
हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा, पन्द्रह प्रमाद होते भावात्मक हिंसा।। (2)

धन्य-धान्य खेती व मकान, सोना-चाँदी वस्त्र व उपकरण।
नौकर चाकर वाहन बर्तन, बहिरंग परिग्रह (में) गर्भित जान।। (3)

अंतरंग परिग्रह ही (होते) प्रमुख, इनके कारण (होते) बहिरंग परिग्रह।
अंतरंग बिना न बाह्य परिग्रह, भाव हिंसा (होती) है अंतरंग परिग्रह।। (4)

अतः बाह्य परिग्रह है हिंसा, परिग्रह हेतु दोनों ही हिंसा।
अतः परिग्रहधारी ही हिंसक, आगम अनुसार वर्णन किया 'कनक'।। (5)

संदर्भ-

द्रव्य हिंसा से बंध भजनीय किन्तु परिग्रह से बंध अवश्य है-

हवदि व ण हवदि बंधो मदम्हि जीवेऽध कायचेट्ठम्हि।
बंधो धुवमुबधीदो इदि समणा छड्डिया सव्वं।। (219) प्र.सार

There is or there is no bondage, when a being dies in the course of physical activities, bondage, is certain from attachment to paraphernalia, therefore ascetics give up everything.

आगे आचार्य कहते है कि बाहरी जीव का घात होने पर बंध होता है तथा नहीं भी होता है, किन्तु परिग्रह के होते हुए तो नियम से बंध होता है।

(कायचेट्ठम्मि) शरीर से हलन-चलन आदि क्रिया के होते हुए (जीवमदे) किसी जंतु के मर जाने पर (हि) निश्चय से (बंधो हवदि) कर्मबंध होता है (वा ण हवदि) अथवा नहीं होता है (अध) परन्तु (उवधीदो) परिग्रह के निमित्त से (बंधो धुवं) बंध निश्चय से होता ही है (इदि) इसीलिये (समणा) साधुओं ने (सव्व) सर्व परिग्रह को (छड्डिया) छोड़ दिया।

साधुओं ने व महाश्रमण सर्वज्ञों ने पहले दीक्षाकाल में शुद्ध-बुद्ध एक स्वभावमई अपने आत्मा को ही परिग्रह मानकर शेष सर्व बाह्य-अभ्यंतर परिग्रह को छोड़ दिया ऐसा जानकर के अन्य साधुओं को भी अपने परमात्म स्वभाव को ही अपना परिग्रह स्वीकार करके शेष सर्व ही परिग्रह को मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदन से त्याग देना चाहिए। यहाँ यह कहा गया है कि शुद्ध चैतन्यरूप निश्चय प्राण का घात जब राग-द्वेष आदि परिणामरूप निश्चयहिंसा से किया जाता है तब नियम से बंध होता है। पर जीव के घात हो जाने पर बंध हो वा न भी हो, नियम नहीं है, किन्तु परद्रव्य में ममतारूप मूर्च्छा-परिग्रह से तो नियम से बंध होता ही है।

समीक्षा–इस गाथा में आचार्य कुंदकुंद भगवन्त ने एक महान् आध्यात्मिक रहस्य का उद्घाटन किया है। शांत, स्वाभाविक, शुद्ध स्वभाव का हनन जिन राग, द्वेष, मोह, ममत्व, इच्छादि भावों से होता है उसे ही निश्चय से हिंसा कहते हैं अर्थात् वैभाविक भाव ही हिंसा है एवं स्वभाव ही 'अहिंसा' है। वैभाविक भावों से रहित जीव की काय की क्रिया से यदि कोई जीव मर जाता है तथापि उसे हिंसा का दोष नहीं लगेगा। इसलिये द्रव्य-हिंसक, भाव अहिंसक हो सकता है, परन्तु जो बाह्य परिग्रहधारी है वह अवश्य अंतरंग परिग्रहधारी है। क्योंकि बिना अंतरंग के मोह, ममत्व, तृष्णा, लोभ के बाह्य परिग्रह को नहीं स्वीकार कर सकता है और मोह, ममत्वादि ही यथार्थ से हिंसा है। इसलिये परिग्रहधारी अवश्य हिंसक है और उसे अवश्य कर्मबंध होता है। परन्तु द्रव्य-हिंसक कथंचित् अहिंसक होने से उसे कर्मबंध नहीं होता है। इस दृष्टि से हिंसक से भी महाहिंसक परिग्रहधारी है। इसलिये अमृतचंद्र सूरी ने इस गाथा की टीका में कहा है कि-परिग्रह सर्वथा अशुद्धोपयोग के बिना नहीं होता है, ऐसा जो परिग्रह का सर्वथा अशुद्धोपयोग के साथ अविनाभाविपना है उससे प्रसिद्ध होने वाले निश्चय अशुद्धोपयोग के सद्भाव के कारण परिग्रह से तो बंध निश्चित है। इसलिये अभी तक जितने भगवान् बने पहले वे परिग्रह को त्यागकर के ही अहिंसक बने। समंतभद्र स्वामी ने कहा भी है-

अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं।
न सा तत्रारम्भोऽस्त्यणुरपि च यत्राश्रमविधौ।।
ततस्तत्सिद्धयर्थं परमकरुणो ग्रन्थमुभयं।
भवानेवात्याक्षीत्र च विकृतवेषोपधिरतः।। (4) (पृ. 132 स्वयंभू स्तोत)

हे भगवन्! प्राणियों की अहिंसा जगत् में परम ब्रह्म रूप से प्रसिद्ध है अर्थात् अहिंसा ही परम ब्रह्म है परन्तु वह अहिंसा उस आश्रय विधि में नहीं है जिसमें की थोड़ा भी आरंभ होता है इसलिये उस अहिंसा धर्म की सिद्धि के लिए परम दयालु होकर आपने ही बाह्य और अभ्यंतर दोनों प्रकार के परिग्रह को छोड़ा है और यथाजात लिंग के विरोधी वेष तथा परिग्रह से आसक्त नहीं हुए है।

अंतरंग एवं बहिरंग परिग्रह पर स्वरूप है। जहाँ पर संयोग है, वहाँ बंध है जहाँ बंध है वहाँ दुःख ही दुःख है। इसलिये मुमुक्षु परिग्रह को दुष्टग्रह, ग्राह (मगरमच्छ) से भी अधिक दुःखदायी मानकर त्याग कर देते हैं पूज्यपाद स्वामी ने कहा भी है-

परः परस्ततो दुःखमात्मैवात्मा ततः सुखं।
अत एव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः।। (45) (पृ. 209 इष्टोपदेश)

देहादि पर पदार्थ तो पर ही है उन्हें अपना मानने से दुःख होता है किन्तु आत्मा, आत्मा ही है-आत्म पदार्थ अपना है। वह अपना ही रहेगा वह कदाचित् भी देहादिरूप नहीं हो सकता-उसे अपनाने से सुख प्राप्त होता है। इसीलिये तीर्थंकरादि महापुरुषों ने आत्मा के लिए ही उद्योग किया है-विविध घोर तपश्चरण के अनुष्ठान द्वारा आत्म तत्त्व की प्राप्ति की है।

अविद्वान् पुद्गल द्रव्यं योऽभिनन्दति तस्य तत्।
न जातु जंतोः सामीप्यं चतुर्गतिषु मुञ्चति।। (46)

अज्ञानी जीव पुद्गल द्रव्य को अपना मानता है अतएव पुद्गल द्रव्य चारों गतियों में आत्मा का संबंध नहीं छोड़ता-वह बराबर साथ बना रहता है।

आचार्य अमृतचंद्र सूरी ने परिग्रह एवं हिंसा को अभिन्न सिद्ध किया है। क्योंकि हिंसा पाप प्रमाद से होता है तथा परिग्रह पाप भी प्रमाद से होता है। अतः दोनों के कारण एक होने से हिंसा एवं परिग्रह में कोई अंतर नहीं है। यथा-

या मूर्च्छा नामेयं विज्ञातव्यः परिग्रहो ह्येषः।
मोहोदयादुदीर्णो मूर्छा तु ममत्व परिणामः।। (111 पु.सि.पृ. 150)

जो यह मूर्च्छा है यह ही परिग्रह जाननी चाहिए तथा मोहनीय कर्म के उदय से

उत्पन्न हुआ ममता रूप परिणाम मूर्च्छा कहलाता है।

मूर्छालक्षणकरणात् सुघटा व्याप्तिः परिग्रहत्वस्य।
सग्रन्थो मूर्छावान् विनापि किल शेष संगेभ्यः।। (112)

परिग्रह का मूर्च्छा लक्षण करने से दोनों प्रकार-बहिरंग और अंतरंग परिग्रह की व्याप्ति अच्छी तरह घट जाती है बाकी सब परिग्रहों से रहित भी निश्चय करके मूर्च्छा वाला परिग्रह वाला है।

यद्येवं भवति तदा परिग्रहो न खलु कोपि बहिरंग।
भवति नितरां यतोसौ धत्ते मूर्च्छा निमित्तत्वं।। (113)

यदि इस प्रकार है अर्थात् परिग्रह का लक्षण मूर्च्छा ही किया जाता है उस अवस्था में निश्चय से कोई भी बहिरंग परिग्रह, परिग्रह नहीं ठहरता है इस आशंका के उत्तर में आचार्य उत्तर देते हैं कि बाह्य परिग्रह भी परिग्रह कहलाता है क्योंकि यह बाह्य परिग्रह सदा मूर्च्छा का निमित्त कारण होने से अर्थात् 'यह मेरा है' ऐसा ममत्व परिणाम बाह्य परिग्रह में होता है इसलिये वह भी मूर्च्छा के निमित्तपने को धारण करता है।

एवमतिव्याप्तिः स्यात्परिग्रहस्येति चेद् भवेन्नैवम्।
यस्मादकषायाणां कर्म ग्रहणे न मूर्च्छास्ति।। (114)

इस प्रकार परिग्रह की अति व्याप्ति होगी यदि ऐसा है तो ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि कषाय रहित वीतराग मुनियों के कर्म के ग्रहण करने में मूर्च्छा नहीं है।

अतिसंक्षेपाद् द्विविधः सः भवेदाभ्यंतरश्च बाह्यश्च।
प्रथमश्चतुर्दशविधो भवति द्विविधो द्वितीयस्तु।। (115)

वह परिग्रह अतिसंक्षेप से दो प्रकार का है आभ्यंतर परिग्रह और बाह्य परिग्रह। पहला आभ्यंतर परिग्रह चौदह प्रकार का है दूसरा बाह्य परिग्रह दो प्रकार का है।

मिथ्यात्व वेद रागास्तथैव हास्यादयश्च षड् दोषाः।
चत्वारश्च कषायाश्चतुर्दशाभ्यन्तराः ग्रन्थाः।। (116)

मिथ्यात्व, पुंवेद स्त्रीवेद, नपुंसक वेद, उसी प्रकार हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, ये छह दोष चार कषाय ये चौदह अभ्यंतर परिग्रह कहलाते हैं।

अथ निश्चित्त सचित्तौ बाह्यस्य परिग्रहस्य भेदौ द्वौ।
नैषः कदापि संगः सर्वोप्यति वर्तते हिंसां।। (117)

इसके अनन्तर बाह्य परिग्रह के भेद बतलाते है बाह्य परिग्रह के अचेतन और

सचेतन दो भेद है। यह दोनों प्रकार का सभी परिग्रह कभी भी हिंसा का अतिवर्तन नहीं करता है।

जिनेन्द्र भगवान् के उपदिष्ट आगम को जानने वाले श्री परम गुरु आचार्य महाराज सचित्त-अचित्त इन दोनों प्रकार के परिग्रहों का छोड़ना अहिंसा है ऐसा सूचित करते हैं और दोनों प्रकार के परिग्रहों का ग्रहण करना हिंसा है ऐसा सूचित करते हैं।

अंतरंग परिग्रहों में हिंसा के पर्याय होने से हिंसा सिद्ध है बहिरंग परिग्रहों में तो नियम से मूर्च्छा ही हिंसापने को सिद्ध करती है।

इस प्रकार अर्थात् यदि बहिरंग परिग्रहों में मूर्च्छा का उत्पन्न होना ही हिंसा है तो बिल्ली और हरिण के बच्चे आदि के विषय में कुछ विशेष नहीं होगा? उत्तर में कहते हैं कि ऐसा नहीं है उनके मूर्च्छा विशेष से विशेष है।

हरे तृणों के अंकुरों को चरने वाले मृग के बच्चे में मंद मूर्च्छा होती है, मूषों के समूहों को नष्ट करने वाली बिल्ली में वही मूर्च्छा तीव्र होती है।

कारण विशेष से कार्य विशेष निश्चय से निर्बाध रीति से सिद्ध होता है जैसे दूध और खांड दोनों की मधुरता में प्रीति का जिस प्रकार भेद देखा जाता है।

माधुर्यप्रीतिः किल दुग्धे मंदैव मंदमाधुर्ये।
सैवौत्कटमाधुर्ये खंडे व्यपदिश्यते तीव्रा।। (123)

निश्चय करके मधुरता में प्रीति मंद मधुरता रखने वाले दूध में मंद ही है वही मधुरता में प्रीति अधिक मधुरता रखने वाली खांड में तीव्र कही जाती है।

आचार्य कुंदकुंद देव ने तो अनासक्ति/वीतरागता/निर्ममत्व को आगमज्ञान से भी श्रेष्ठ बताया है। वे कहते है कि परमाणु प्रमाण परद्रव्य के प्रति जो राग करता है वह सर्वागमज्ञ होकर भी आत्मा को नहीं जानता है। यथा-

पुग्गलकम्मं कोहो तस्स विवागोदयो हवदि एसो।
ण दु एस मज्झ भावो जाणगभावो दु अहमिक्को।। (207)

(समयसार पृ. 202)

सम्यक्दृष्टि विरागी जीव ऐसा जानता है कि राग नाम का पौद्गलिक कर्म है उसके विपाक का उदय ही मेरे अनुभव में प्रतीति रूप से आया करता है सो यह मेरा स्वभाव नहीं है। मैं तो निश्चय से एक ज्ञायक स्वभाव हूँ इसमें संदेह नहीं।

यदि सम्यक्दृष्टि से कोई यह पूछता है कि नाना प्रकार के कर्मोदय के फल का

विपाक रूप विभाव परिणाम वह तेरा स्वभाव क्यों नहीं है तो वह कहता है कि कर्म स्वयं परद्रव्य है जिनके द्वारा उत्पन्न हुए क्रोधादिक भाव औपाधिक हैं, मेरे स्वभाव कैसे हो सकते हैं। देह तो स्पष्ट ही जड़ स्वरूप है मुझसे भिन्न है।

एवं सम्मादिट्ठी अप्पाणं मुणदि जाणग सहावं।
उदयं कम्मविवागं मुअदि तच्चं वियाणंतो।। (209)

इस प्रकार वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जानता हुआ जो जीव अपने आप को ज्ञायक स्वभाव मानता है और कर्म के उदय को कर्म का विपाक जानकर उसे छोड़ता है वही सम्यक्दृष्टि होता है।

उदय विवागो विविहो कम्माणं वण्णिदो जिणवरेहिं।
ण दु ते मज्झ सहावा जाणगभावो दु अहमिक्को।। (210)

योगी जानते हैं कि श्री जिन भगवान् ने कर्मों के रस का उदय अनेक प्रकार का बतलाया है वह सब मेरा स्वभाव नहीं है। मैं तो एक ज्ञायक स्वभाव वाला हूँ।

परमाणु मित्तियं पि हु य रागादीणं तु विज्जदे जस्स।
ण वि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागम धरोवि।। (211)
अप्पाणमयाणंतो अणप्पयं चा वि सो अयाणंतो।
कह होदि सम्मदिट्ठी जीवा जीवे अयाणंतो।। (212)

जिसके रागादिकों का लेशमात्र भी विद्यमान है तो वह जीव संपूर्ण द्वादशांग शास्त्र का पारंगत होकर भी आत्मा को नहीं जान सकता और जब आत्मा को नहीं जान सकता तो वह अन्य को भी नहीं जान सकता एवं जो आत्मा और पर को नहीं जान सकता वह जीव और अजीव दोनों को भी नहीं जानने वाला सम्यक्दृष्टि कैसे हो सकता है? कभी नहीं हो सकता।

जो वेददि वेदिज्जदि समये समये विणस्सदे उभयं।
तं जाणगो दु णाणी उभयमवि ण कंखदि कदावि।। (213)

जो रागपूर्वक जानने वाला भाव है और जो उसके द्वारा जाना जाता है ये दोनों ही समय-समय पर विनष्ट हो जाते हैं। इन दोनों में से जो किसी को भी अंगीकार नहीं करता है किन्तु केवल ज्ञायक मात्र होकर रहता है वह ज्ञानी होता है।

बंधुवभोगणिमित्तं अज्झवसाणोदएसु णाणिस्स।
संसारदेह विसएसु णेव उपज्जदे रागो।। (214)

बंध व उपभोग के निमित्तभूत ऐसे दो प्रकार के अध्यवसान के उदय होते हैं

जो कि संसार और देह विषयक होते हैं उनमें ज्ञानी जीव के कभी राग पैदा नहीं होता।

मज्झं परिग्गहो जदि तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज।
णादेव अहं जह्मा तह्मा ण परिग्गहो मज्झं।। (215)

यदि यह शरीरादिक परद्रव्य भी मेरा परिग्रह हो जाये तो फिर मैं भी अजीवपने को प्राप्त हो जाऊँ। किन्तु मैं तो ज्ञाता ही हूँ इसलिये यह सब कुछ मेरा परिग्रह नहीं है।

आदम्हि दव्वभावे अथिरे मोत्तूण गिण्ह तव णियदं।
थिरमेग मिमं भावं उवलब्भंतं सहावेण।। (216)

आत्मा में जो द्रव्य और भावकर्म है उनको अस्थिर जान करके छोड़ दे और अपने ही निश्चित, स्थिर, एक, स्वभाव से अनुभव ने योग्य इस प्रत्यक्षीभूत आत्म पदार्थ को ग्रहण कर।

को णाम भणिज्ज बुहो परदव्वं मम इदं हवदि दव्वं।
अप्पाणमप्पणो परिग्गहं तु णियदं वियाणंतो।। (217)

कौन ज्ञानी है जो परद्रव्य को भी 'यह मेरा द्रव्य है' इस प्रकार कहता रहे, क्योंकि वह तो नियम से अपने आपको ही अपना परिग्रह (उपादेय) जानता रहता है।

परिग्रह बहुत बड़ी हिंसा एवं बहुत बड़ा पाप होने पर भी आज स्वयं को जैन धर्मावलम्बी मानने वाले आनुशंगिक द्रव्य हिंसा को बहुत बड़ा पाप मानते हैं परन्तु परिग्रह को हिंसा या पाप नहीं मानते हैं, वे परिग्रह को तो पुण्य मानते हैं, शान, स्वाभिमान की वस्तु मानते हैं, जो अन्यायपूर्ण प्रणाली से यथा-मिलावट, शोषण, ठगबाजी, धोखाधड़ी आदि से भी धन कमाकर धन्नासेठ बन जाते हैं, उसे लोग पुण्यशाली धार्मिक मानते हैं और उसके अनैतिक पूर्ण, अन्याय पूर्ण, अधार्मिक व्यवहार को भी भय के कारण सहन करते हैं परन्तु प्रतिवाद नहीं करते, निराकरण नहीं करते हैं। कुछ व्यक्ति दानादि करके अपना नाम कमाने के लिए, अहंकार की पुष्टि के लिए अन्याय से भी धन कमाते हैं और इस अन्याय पूर्ण धन से यद्किंचित् दान देकर स्वयं को धार्मिक एवं दानी मानते हैं। इतना ही नहीं, इस दान के पीछे सेलटैक्स चोरी, इन्कम टैक्स चोरी तथा समाज के ऊपर प्रभाव डालना, अपना वर्चस्व कायम करना आदि कुभावना भी निहित रहती है। हमारे आचार्यों ने यहाँ तक कहा है कि दान देने के लिए भी धन कमाना मानो स्नान करके शरीर को स्वच्छ करने के बहाने शरीर को मल से लिप्त करना है। यथा-

त्यागाय श्रेयसे वित्तमवित्तः संचिनोति यः।

स्वशरीरं स पङ्केन स्नास्यामीति विलिम्पति।। (16) (पृ. 18 इष्टोपदेश)

जो निर्धनी पुरुष, पुण्य प्राप्ति होगी ऐसा विचार कर दान करने के लिए धन कमाता या जोड़ता है, वह स्नान कर लूँगा ऐसे ख्याल से अपने शरीर को कीचड़ से लपेटता है।

जो निर्धनी ऐसा खल करे कि 'पात्रदान, देवपूजा आदि करने से नवीन पुण्य की प्राप्ति और पूर्वोपार्जित पाप की हानि होगी, इसलिये पात्रदानादि करने के लिए धन कमाना चाहिए, नौकरी खेती आदि करके धन कमाता है, समझना चाहिए कि वह 'स्नान कर डालूँगा' ऐसा विचार कर अपने शरीर को कीचड़ से लिप्त करता है। खुलासा यह है कि जैसे कोई आदमी अपने निर्मल अंग को 'स्नान कर लूँगा' का ख्याल कर कीचड़ से लिप्त कर डाले, तो वह बेवकूफ ही गिना जायेगा। उसी तरह पाप के द्वारा पहिले धन कमा लिया जाय, पीछे पात्रदानादि के पुण्य से उसे नष्ट कर डालूँगा, ऐसे ख्याल से धन के कमाने में लगा हुआ व्यक्ति को भी समझना चाहिए। संस्कृत टीका में यह भी लिखा हुआ है कि चक्रवर्ती आदिकों की तरह जिसको बिना यत्न किये हुए धन की प्राप्ति हो जाय तो वह उस धन से कल्याण के लिए पात्रदानादिक करे तो करे। फिर किसी को भी धन का उपार्जन, शुद्ध वृत्ति से हो भी नहीं सकता जैसा कि श्री गुणभद्राचार्य ने आत्मानुशासन में कहा भी है-

''शुद्धैर्धनैर्विवर्धन्ते, सतामपि न संपदः।
न हि स्वच्छाम्बुभिः पूर्णाः कदाचिदपि सिन्धवः।।'' (45)

''सत्पुरुषों की संपत्तियाँ, शुद्ध ही शुद्ध धन से बढ़ती हैं, यह बात नहीं है। देखों, नदियाँ स्वच्छ जल से ही परिपूर्ण नहीं हुआ करती हैं। वर्षा में गंदले पानी से भी भरी रहती है।''

कोई प्रश्न कर सकता है कि फिर श्रावक को दानादि में भी धन खर्च नहीं करना चाहिए यह भाव निकलता है? परन्तु रहस्य यह है कि परिग्रह पाप है और परिग्रहधारी हिंसक है इसलिये समग्रता से संपूर्ण परिग्रह त्याग करना चाहिए। यदि संपूर्ण त्याग नहीं कर पाता है तो परिग्रह अणुव्रत को धारण करे। इस अणुव्रत में भी जो पाप संचय होता है इसके साथ अन्य-अन्य गृहस्थ संबंधी पाप को कम करने के लिए निर्लोभता के, त्याग को बढ़ाने के लिए न्याय से कमाये धन से यथाशक्ति ज्ञान, औषध आहारादि दान दे। यदि परिग्रहधारी होकर भी दानादि नहीं करता है तो और भी महान् पापी है, लोभी है। दान में हिंसा स्वरूप लोभ को निरसन किया जाता है और

जो दान नहीं देता है वह लोभ रूपी हिंसा को करता है। अमृतचंद सूरि ने उपर्युक्त विषय को स्पष्ट रूप से निम्न प्रकार प्रतिपादन किया हैं-

हिंसायाः पर्यायो लोभोऽत्र निरस्यते यतो दाने।

तस्मादतिथिवितरणं हिंसाव्युपरमणमेवेष्टम्।। (172) पृ. 195 (पु.सिद्ध.)

दान देना अहिंसा है, अर्थात् हिंसा को दूर हटाना है। कारण कि दान देने से लोभ कषाय का त्याग होता है, बिना लोभ कषाय का त्याग किये दान देने के परिणाम ही नहीं होते, इसलिए दानी के लोभ कषाय छूट जाता है। लोभ कषाय हिंसा का ही दूसरा नाम है, कारण कि कषाय मात्र ही आत्मा के परिणामों की हिंसा करने वाले हैं इसलिए लोभ कषाय ही आत्मा को मोहित एवं प्रमत्त बनाता है इसलिए वह भी हिंसा स्वरूप है। दान देने से उस लोभ कषाय रूप हिंसा का नाश होता है इसलिए अतिथि को दान देने से अहिंसा धर्म की सिद्धि होती है अथवा हिंसा भाव का परित्याग होता है।

गृहमागताय गुणिने मधुकरवृत्त्या परानपीडयते।

वितरति यो नातिथये स कथं न हि लोभवान् भवति।। (173) पृ. 196

जिनकी आत्मा में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चरित्र गुण प्रकट हो रहे हैं, जो किसी जीव को पीड़ा नहीं पहुँचाने का भाव रखते हैं तथा शरीर से भी अच्छी तरह निरीक्षण करने के कारण जो दूसरे को पीड़ा नहीं होने देते, जिस प्रकार भौंरा (भ्रमर) प्रत्येक पुष्प पर बैठता है परन्तु उसे विनष्ट नहीं होने देता, पुष्प को किसी प्रकार का आघात पहुँचाये बिना ही उसका रसास्वाद लेता है। उसी प्रकार जो भ्रामरी वृत्ति से कभी किसी के यहाँ और कभी किसी के यहाँ आहार लेने जाते हैं किसी एक स्थान में ही मोहित वृत्ति नहीं रखते और न किसी को किसी प्रकार का कष्ट ही देते हैं जो सदा गृहवास छोड़कर जंगल में निवास करते हैं ऐसे साधुओं का घर आना बड़े ही पुण्योदय से होता है, सहसा नहीं होता फिर भी घर आये हुए साधुओं को जो गृहस्थ दान नहीं देता है वह कितना लोभी है यह बात छिपी नहीं रह सकती अर्थात् जिसके परिणाम घर पधारे हुए रत्नत्रयधारी परम शांत वृत्ति वाले वीतरागी मुनियों के लिए भी आहारदान करने के नहीं होते हैं महान् लोभी है ऐसा लोभी पुरुष कभी स्व-पर कल्याण नहीं कर सकता किन्तु अपनी आत्मा को ठगता है।

कृतमात्मार्थं मुनये तदाति भक्तमिति भावितस्त्यागः।

अरतिविषादविमुक्तः शिथिलितलोभो भवत्यहिंसैव।। (174)

जो पदार्थ अपने लिए तैयार किया जाये और फिर उसको स्वयं देने के परिणाम हो जाये तो उस समय निश्चय से लोभ मंद हो जाता है कारण यदि लोभ की तीव्रता होगी तो देने के परिणाम ही नहीं होंगे, उस समय गृहीता के गुणों में प्रेम भी अवश्य ही हो जाता है, क्योंकि अपना प्रयोजनी भूत पदार्थ दूसरों को प्रेम के वश होकर ही दिया जा सकता है अन्यथा नहीं और विषाद भी उस समय नष्ट हो ही जाता है उस पदार्थ के दान को जो अपने लिए खेदजनक समझेगा वह उसका दान ही क्यों करेगा। इस प्रकार अपने लिए तैयार किये हुए भोजन को जो गृहस्थ भावपूर्वक मुनि महाराज को देता है उसके उस समय अरति, विषाद और लोभ तीनों ही नष्ट हो जाते हैं और इन तीनों के नष्ट हो जाने से उस समय आत्मा के अहिंसामय भाव रहते हैं इसलिये दान को अहिंसा स्वरूप समझना चाहिए। समंतभद्र स्वामी ने भी दानादि का महत्व निम्न प्रकार से प्रतिपादन किया है-

गृहकर्मणापि निचितं कर्म विमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानाम्।
अतिथीनां प्रतिपूजा रूधिरमलं धावते वारि।। (24) पृ. 204 (रत्न.श्रा.)

जिन्होंने अंतरंग और बहिरंग से घर का त्याग कर दिया है तथा सब तिथियाँ जिन्हें एक समान हैं, किसी खास तिथि से राग-द्वेष नहीं है ऐसे मुनियों के लिए जो दान दिया जाता है वह सावद्य व्यापार-सपाप कार्यों से संचित बहुत भारी कर्म को भी उसी तरह नष्ट कर देता है जिस तरह की जल, मलिन रूधिर को धो देता है-नष्ट कर देता है।

उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा।
भक्तेः सुन्दरूपं स्तवनात्कीर्तिस्तपोनिधिषु।। (25)

तपस्वियों को प्रणाम करने से उच्चगोत्र, दानादिक देने से भोग, पड़गाहने से पूजा, प्रभावना, भक्ति अर्थात् गुणानुराग से उत्पन्न श्रद्धा विशेष से सुन्दर रूप तथा ''आप ज्ञान के सागर हैं'' इत्यादि स्तुति करने से कीर्ति प्राप्त होती है।

क्षितिगतमिव वटबीजं पात्रगतं दानमल्पमपि काले।
फलति च्छायाविभवं बहुफलमिष्टं शरीरभृताम्।। (26)

जिस प्रकार उत्तम भूमि में उचित समय में डाला हुआ छोटे से वट का बीज संसारी जीवों के बहुत भारी छाया के साथ बहुत से इष्ट फल को फलता (देता) है, उसी प्रकार उचित समय में सत्पात्र के लिए दिया हुआ थोड़ा भी दान संसारी प्राणियों के लिए अभिलषित सुंदर रूप तथा भोगोपभोग आदि अनेक प्रकार के फल को प्रदान

करता है। दानपक्ष में 'छाया विभवं' का समान इस प्रकार होता है 'छाया माहात्म्यं विभवः सम्पत् तौ विद्यते यस्मिन् इति फलस्य विशेषणं' छाया का अर्थ माहात्म्य होता है और विभव का अर्थ संपत्ति होता है। छाया और माहात्म्य ये दोनों जिस फल में विद्यमान हैं उस फल को दान देता है। छाया का अर्थ अनातप-घाम का अभाव होता है और विभव का अर्थ प्राचुर्य-अधिकता लिया जाता है। 'छाया-आतप निरोधिनी तस्या विभवः प्राचुर्यं यथाभवत्येवं' इस प्रकार क्रिया विशेषण किया जाता है।

आहारौषधयोरप्युपकरणावासयोश्य दानेन।
वैयावृत्यं ब्रुवते चतुरात्मत्वेन् चतुरस्त्रा।। (27)

भक्त पान आदि को आहार कहते हैं, बीमारी को दूर करने वाले पदार्थ को औषध कहते हैं, ज्ञानोपकरण आदि को उपकरण कहते हैं और वसतिका आदि को आवास कहते हैं। इन चारों वस्तुओं को देने से वैयावृत्य चार प्रकार का होता है ऐसा पंडितजन निरूपण करते हैं।

मेरी (आ. कनकनन्दी) अहिंसा की साधना/(यात्रा)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की धड़कन....., चन्दा मामा.....)

कितनी न्यारी/(प्यारी) अहिंसा मेरी...आत्म स्वभावमय समता वाली...
राग-द्वेष-मोह रहित वाली...आत्म-विशुद्धि सहित वाली...(स्थायी)...
सभी जीव प्रति मैत्री वाली...गुणी जीव प्रति प्रमोद वाली...
दुःखी जीव प्रति करूणा वाली...विपरीत जीवों से समता वाली...
भाव अहिंसा प्रमुख वाली...ईर्ष्या घृणा तृष्णा रिक्त वाली...
पञ्च महाव्रत समिति वाली...प्रमाद रहित भावना वाली...(1)...
दुष्ट-दुर्जन पापी जीवों से...फैशनी-व्यसनी-मिथ्यादृष्टि से...
क्रूर हिंसक-अत्याचारी से...होती न भाव-हिंसा मुझ से...
अन्य पंथ मत जाति धर्म से...भाषा भाषी वेशभूषा राष्ट्र से...
मनुष्य पशु-पक्षी कीट-पतंग से...होती न भाव-हिंसा मुझ से...(2)...
आत्म परिणाम की हिंसा न करूँ...विश्व कल्याण की भावना धरूँ...
अन्य की क्षति-निन्दा न करूँ...समदर्शी निस्पृह भावना धरूँ...
आहार-विहार-निहार शयन...करवट लेना मल विसर्जन...

उठना-बैठना-प्राणायाम (योग) आसन...श्वास क्रिया स्वास्थ्य रक्षा के कारण...(3)...
उपकरण पाटा चटाई के कारण...हिंसा जो होती छद्मस्थ-कारण...
आनुषंगिक अपवाद में जो होती...अनिच्छापूर्वक नहीं भाव से...
अशक्य अनुष्ठान हीन शक्ति से...विपरीत जन द्रव्य क्षेत्र काल से...
स्वास्थ्य प्रतिकूल वातावरण से...होती द्रव्य हिंसा नहीं भाव से...(4)...
निन्दा गर्हा प्रतिक्रमण भी करता...प्रत्याख्यान आलोचना करता...
उत्तम द्रव्य क्षेत्र काल भी चाहता...सम्पूर्ण अहिंसा से मोक्ष चाहता...
शक्ति अनुसार व्यवहार करता...अनर्थ दण्ड से बचते रहता...
दिखावा आडम्बर नहीं करता...भौतिक निर्माण न वाहन रखता...(5)...
पण्डाल मञ्च होर्डिंग पत्रिका...(तीर्थ) यात्रा व्यवस्था नहीं करवाता...
निस्पृह एकान्त में मौन रहता...'कनकनन्दी' की यह अहिंसा यात्रा/(साधना)...(6)...

नन्दौड़, दिनांक 03.09.2015, रात्रि 9.00

सन्दर्भ-

एक के वध में अनेकों की रक्षा का विचार भी हिंसा

रक्षा भवति बहूनामेकस्यैवाऽस्य जीव हरणेन।
इति मत्वा कर्त्तव्यं, न हिंसनं हिंस्र सत्त्वानाम्।।83।।

व्याख्या-भावानुवाद-एक हिंस्र जीव की हत्या करने से अनेक जीवों की रक्षा हो जायेगी इसी प्रकार विचार करके हिंस्र जीव की हत्या नहीं करनी चाहिए। बुद्धिमानों के द्वारा एक दुष्ट सर्प, व्याघ्र, शुकर, सिंह आदि की हत्या करके अनेक जीवों की रक्षा होगी ऐसा विचार करके उन हिंस्र सर्प आदि की हिंसा नहीं की जानी चाहिए।

समीक्षा-पर्यावरण की सुरक्षा तथा संतुलन के लिये विश्व के प्रत्येक प्राणी की आवश्यकता है तथा उसका योगदान भी है। जिस प्रकार शरीर के प्रत्येक अवयव की सुरक्षा की आवश्यकता है तथा जिस प्रकार शरीर के किसी भी एक अवयव के रुग्ण या क्षतिग्रस्त होने पर सम्पूर्ण शरीर प्रभावित होता है उसी प्रकार विश्व के किसी भी घटक को क्षति पहुँचाने पर सम्पूर्ण विश्व भी प्रभावित होता है। जिस प्रकार शान्त जलाशय में किसी भी भाग में पत्थर फेंकने पर वहाँ से जो तरंगें निकलती हैं वे तरंगें

सम्पूर्ण जलाशय को प्रभावित करती हैं। उसी प्रकार किसी भी जीव को कष्ट देने पर या मारने पर सम्पूर्ण पर्यावरण प्रभावित होता है। यह सब आधुनिक विज्ञान में सिद्ध हो चुका है, इसलिये वर्तमान में पर्यावरण की सुरक्षा के लिये हर प्राणी की सुरक्षा हो रही है एवं सुरक्षा के लिये कानून बन रहे हैं। प्रकारान्तर से इस श्लोक में अहिंसा के वर्णन के साथ-साथ पर्यावरण सुरक्षा का भी वर्णन किया गया है। कोई एक जीव को हिंसक मानकर के उसकी हिंसा करता है तो हिंसा करने वाला स्वयं हिंसक हो गया, तो फिर वह स्वयं दूसरों के द्वारा मारने योग्य बन जायेगा। ऐसी परम्परा आगे चलती जायेगी जिससे बहुत बड़ा अनर्थ हो जायेगा।

पापी को पाप से बचाने के लिये भी मारना हिंसा

बहुसत्त्व-घतिनोऽमी जीवंत उपर्जयंति गुरु पापम्।
इति अनुकंपां कृत्वा न हिंसनीयाः शरीरिणो हिंस्राः।।84।।

व्याख्या-भावनुवाद-सर्प आदि हिंस्र जीव जीवन्त चूहादि को मारकर बहुत पापार्जन करते हैं इसलिए यह सर्पादि हिंसक पशु और अधिक पाप न करे ऐसी दया करके उन हिंस्र सर्पादि को नहीं मारना चाहिए।

समीक्षा-सर्प, सिंह आदि माँसाहारी प्राणी अन्य प्राणियों को मारकर भोजन करते हैं। ऐसी अवस्था में कोई विचार करे कि यह प्राणी दूसरे जीवों को मारकर पाप कमा रहे हैं जिसके कारण वे मरकर नरकादि में जाकर दुःख प्राप्त करेंगे। अतः इन सर्पादि को मार देना ही श्रेय है। परन्तु यह अविचारित रम्य, अयथार्थ है क्योंकि वे जीव पूर्व संस्कार के कारण दूसरे जीवों को मारकर खाते हैं। वे हिंस्र पशु भी स्वयं मरना नहीं चाहते हैं परन्तु दुःखों से घबराते हैं। उन्हें मारने पर उन्हें कष्ट होगा और मारने वाले को पापबंध होगा जिसके कारण वे स्वयं आगे जाकर उसी प्रकार हिंस्र पशु या नरक में जन्म लेंगे। जिससे वे पुनः दूसरों की हिंसा करेंगे। दूसरे जीव हिंस्र हैं इसी प्रकार मानकर हिंस्र पशु आदि को मारने वाले स्वयं हिंस्र हो जायेंगे जिसके कारण वे भी अन्य जीवों के द्वारा मारने योग्य हो जायेंगे। इससे एक अखण्ड अनर्थ परम्परा/हिंसा परम्परा प्रारंभ हो जायेगी। इसके साथ-साथ माँसाहारी हिंसक पशु भी केवल पेट भरने के लिये अन्य जीवों को खाते हैं वे भी व्यर्थ में दूसरे जीवों को नहीं मारते हैं। ऐसी परिस्थिति में स्वयं को दयालु, परोपकारी, धार्मिक मानने वाले वे कैसे दूसरे जीवों को व्यर्थ मार सकते हैं अर्थात् नहीं मार सकते हैं और मारना भी नहीं चाहिए।

दुःखी को भी नहीं मारना चाहिए

बहुदुःख संज्ञापिताः प्रयांति अचिरेण दुःख विच्छित्तिं।
इति वासना कृपाणि मादाय न दुःखिनोऽपि हंतव्या।।85।।

व्याख्या-भावानुवाद-दूसरे दुःखी जीवों को देखकर उनके दुःख को शीघ्र दूर करने के लिए उनकी हत्या करना योग्य नहीं है। दुःखी जीवों के दुःख उनकी मृत्यु से नष्ट हो जायेंगे ऐसे दुर्विचार रूपी तलवार को लेकर दूसरे जीवों की हत्या नहीं करनी चाहिए।

समीक्षा-कोई मोही, अज्ञानी जीव मोह तथा अज्ञानता से युक्त दया से प्रेरित होकर यह विचार करके कि दुःखी जीव जब तक जीवित रहता है तब तक वह दुःखी रहता है। उसके मरण के साथ-साथ उसके दुःख भी विनाश हो जाते हैं इसी प्रकार विचार करके दूसरे जीवों की हत्या कर देते हैं परन्तु यह कार्य यथार्थ दया, करुणा तथा परोपकारी भावना से रहित है। जब तक पापकर्म नष्ट नहीं होता है तब तक दुःख भी नष्ट नहीं होंगे। मृत्यु के बाद भी ये पापकर्म अन्य भव में उसको कष्ट पहुँचाते ही रहेंगे इसलिए दूसरों के दुःख दूर करने के लिये उसको धर्मोपदेश देकर उसको पापकर्म से निवृत्त करना चाहिए। पापकर्म से निवृत्त होने से उसका पाप भी निवृत्त हो जाएगा और पाप के निवृत्त होने से उसका दुःख भी दूर हो जाएगा। इसके विपरीत दुःखी जीवों की हत्या से दुःखी जीव को कष्ट तो होता ही है हत्या करने वाले को पापबंध होता है। इसके कारण वह भी दुःखी हो जाता है। जिस प्रकार गंदे वस्त्र को साफ करने के लिये स्वच्छ पानी चाहिए न कि गंदा पानी। गंदे पानी से तो वस्त्र और भी गंदा हो जायेगा इसी प्रकार दुःखी जीव को मारने पर दुःखी जीव मरते वक्त तो दुःखी होगा आगे भी दुःखी होगा तथा मारने वाला भी दुःखी हो जायेगा। जिस प्रकार मच्छर, खेत के कीड़े आदि को मारने के लिये विषाक्त रसायन का प्रयोग किया गया। उस विषाक्त रसायन से वे कीड़े और भी विषाक्त हो गये। उनकी रोग-प्रतिरोधक शक्ति बढ़ने के कारण वे उस विषाक्त रसायन को खाकर जीवित रहने लगे। इससे जल, मृदा, वायु, भोजन भी प्रदूषित हो गये जिसके कारण लाभ के बदले हानि ही अधिक हुई।

सुखी को भी नहीं मारना चाहिए

कृच्छेण सुखाऽवाप्ति र्भवंति सुखिनो हताः सुखिन एव।
इति तर्क मंडलाग्रः सुखिनां घाताय नाऽऽदेयः।।86।।

व्याख्या-भावानुवाद-पंचेन्द्रिय जनित सुख की उपलब्धि बहुत कष्ट से होती है इसलिये ऐसे पंचेन्द्रिय सुख से युक्त पुरुष को मारने पर वह आगे भी मरकर सुखी ही होगा। इसी प्रकार कुतर्क रूपी तलवार से युक्त होकर दूसरे सुखी जीवों का घात नहीं करना चाहिये।

समीक्षा-कोई अज्ञानी विचार करता है कि जो अभी भौतिक सुख से सम्पन्न है यदि उसकी मृत्यु सुख सम्पन्न अवस्था में होगी तो वह मरकर के आगे भी सुखी होगा। इसलिये उसका घात सुखी अवस्था में करने से आगे भी उसको सुख मिलेगा परन्तु सांसारिक सुख भी पुण्य से मिलता है। पुण्य के अभाव में सुख नहीं मिल सकता है। जो वर्तमान में भौतिक सुख से सम्पन्न है वह प्रथमतः मरना नहीं चाहता है उसको मारने पर वह दुःखी, चिंतित एवं संक्लेशित हो जाएगा, जिसके कारण उसको पापबंध होगा। पापबंध के कारण उसको अगले जन्म में दुःख मिलेगा। मरते समय तो वह दुःखी होगा और आगे भी दुःख मिलेगा। इसी प्रकार जो उसको मारेगा वह भी पाप कमायेगा जिसके कारण वह भी आगे जाकर दुःखी होगा। इसलिये न दुःखी जीवों को मारना चाहिये, न सुखी जीवों को मारना चाहिये।

स्वाध्याय ही परम तप व धर्मध्यान

-आ. कनकनन्दी

(चाल : सायोनारा....., तुम दिल की धड़कन.....)

1. ज्ञान तो आत्मा का स्वभाव है, ज्ञान तो अनंत तक होता है।
   ज्ञानानन्द है शुद्ध आत्मा, शुद्ध-बुद्ध आनंदमय होता है।।
2. सम्यग्दर्शन व ज्ञान चारित्र में, मध्य दीपक भी होता है सुज्ञान।
   सम्यग्दर्शन व चारित्र दोनों को, प्रकाशित करता है सुज्ञान।।
3. हेय-उपादेय व ग्राह्य-अग्राह्य, करणीय तथा अकरणीय भी।
   सत्य-असत्य व धर्म-अधर्म, जानता है ज्ञान, ज्ञान-ज्ञेय (को) भी।।
4. ज्ञान बिना नहीं है आत्मा का ज्ञान, आत्म चिन्तन व अनुप्रेक्षा ध्यान।
   चारित्र पालन व जीवों के रक्षण, अध्यापन व लेखन-प्रवचन।।
5. ध्यान-अध्ययन अतः मुनिधर्म, ध्यान-अध्ययन बिन नहीं श्रमण।
   स्वाध्याय होता है परम तप, धर्मध्यान संवर व निर्जरा।।
6. नवीन-नवीन संवेग व वैराग्य, बढ़ता आध्यात्मिक ज्ञानानन्द।
   समता शान्ति निस्पृहता बढ़ती, उदारता व आत्मविशुद्धि बढ़ती।।

7. अतः सतत स्वाध्याय करणीय, विनय व शुद्धि से संयुक्त।
मनन चिन्तन अनुप्रेक्षा सहित, अतएव 'कनक' स्वाध्यायरत।।

नन्दौड़, दिनांक 29.08.2015, अपराह्न 5.35

सन्दर्भ-

ज्ञानाभ्यास कर्मक्षय का हेतु

णाणब्भास विहीणो स-पर तच्चं ण जाणदे किं पि।
झाणं तस्स ण होइ हु, ताव ण कम्मं खवेइ ण हु मोक्खं।।79।। रयणसार

अर्थ-ज्ञानाभ्यास से विहीन जीव स्व-पर तत्त्व को कुछ भी नहीं जानता उसके निश्चय से ध्यान नहीं होता, तब तक कर्मों का क्षय नहीं करता, न ही मोक्ष होता है अर्थात् ज्ञानाभ्यास के बिना स्व-पर की पहचान नहीं। स्व-पर की पहचान बिना ध्यान नहीं। ध्यान के बिना कर्मों का क्षय नहीं और कर्मक्षय के बिना मुक्ति नहीं। नीतिकार कहते हैं-

''नास्ति काम समो व्याधि, नास्ति मोह समो रिपुः।
नास्ति क्रोध समो वह्नि नास्ति ज्ञान समं सुखम्।।''

ज्ञान के समान अन्य कोई सुख नहीं है अतः हे भव्यात्माओं! यदि तुम्हें गुरु या शिक्षक के सामने उतना ही अपमानित और नीचा बनना पड़े, जितना कि भिक्षुक को धनवान् के समक्ष बनना पड़ता, फिर भी तुम ज्ञानाभ्यास करो। मनुष्यों में अधम वे लोग है, जो ज्ञानाभ्यास से/विद्या सीखने से विमुख होते है। मानव जाति की दो आँखें हैं एक अंक और एक अक्षर।

स्रोत को जितना खोदा जायेगा, उतना ही अधिक पानी निकलेगा। ठीक उसी प्रकार जितना अधिक ज्ञानाभ्यास किया जायेगा, स्व-पर का भेदज्ञान होगा। भेदविज्ञान की सिद्धि होने पर ध्यान में एकाग्रता होगी। ध्यान की निश्चलता में कर्मों का क्षय होते ही मुक्ति की प्राप्ति होगी।

अध्ययन ही ध्यान है

अज्झयण-मेव झाणं, पंचेंदिय-णिग्गहं कसायं पि।
तत्तो पंचम-याले पवयण-सारब्भास-मेव कुज्जाह।।10।।

अर्थ-अध्ययन ही ध्यान है। पंचेन्द्रियों का निग्रह व कषायों का भी निग्रह/शमन अध्ययन से होता है। इसलिये पंचमकाल/वर्तमान पंचकाल में जिनेन्द्र भगवान्

के श्रेष्ठ वचनों का अभ्यास करना चाहिये।

जैसे धागे सहित सुई प्रमाद दोष से भी खोती नहीं है, ऐसे ही सूत्राध्ययन/प्रवचनासार जिनागम के अभ्यास से सहित पुरुष प्रमाद दोष से भी नष्ट नहीं होता। प्रवचनसार-जिनागम का अर्थ क्या है?

आचार्यश्री समन्तभद्र स्वामी प्रवचनसार जिनागम का भाव लिखते हुए कहते हैं-''प्रकृष्ट वचनं=प्रवचन हैं उसका सार प्रवचनसार जिनागम/जिनवाणी है।'' वो प्रवचनसार कैसा है-

अन्यून-मनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात्।

निःसंदेहं वेद यदाहु-स्तज्ज्ञान-मागमिनः।।

जो न्यूनता-अधिकता रहित है, याथातथ्य है, विपरीतता से रहित है, संदेह रहित है तथा तर्क या प्रत्यक्ष अनुमान आदि से उल्लंघनीय नहीं है वह सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेव का वचन प्रवचनसार-जिनागम है।

स्वाध्याय ही परम तप है-''**स्वाध्यायो परमः तपः।**''

स्वाध्याय ही परम ध्यान है क्योंकि 1. ध्यान के समान ही स्वाध्याय से मन-वचन-काय तीनों की एकाग्रता होती है। 2. स्वाध्याय करने से अज्ञान का नाश व ज्ञान का प्रकाश होता है। 3. तत्काल ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम बढ़ता है। 4. असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा होती है। 5. हेयोपादेय रूप भेद-विज्ञान की सिद्धि।

स्वाध्याय तप का फल-1. तत्त्व का अभ्यास, 2. वैराग्योत्पत्ति, 3. धर्मप्रभावना, 4. कुवादियों का मान-मर्दन, 5. स्वाध्याय, 6. परम रसायन।

सम्यक्ज्ञान ही धर्मध्यान

पावारंभ-णिवित्ती पुण्णारंभे पउत्तिकरणं पि।

णाणं धम्मज्झाणं जिणभणियं सव्वजीवाणं।।91।।

अर्थ-जिनेन्द्र देव ने समस्त प्राणियों के लिए ज्ञान को ही धर्मध्यान कहा है; क्योंकि हिंसादि पाँच पापरूप आरंभ का त्याग व षट् आवश्यक रूप पुण्य कार्यों में प्रवृत्ति ज्ञान से ही होती है।

स्व-पर तत्त्व का ज्ञाता स्वाध्याय करने वाला सम्यग्दृष्टि जीव ज्ञानी है। उस ज्ञान के फल से ज्ञानी के-1. सकल पदार्थ का बोध, 2. हित-अहित का बोध, 3. भाव संवर, 4. नवीन-नवीन संवेग, 5. मोक्षमार्ग में स्थिति, 6. तपोभावना और 7. अन्यदिक् ये 7 गुण प्रगट होते है। इसीलिये गुणों से सम्पन्न वह पाप का त्याग कर पुण्य

में प्रवृत्ति करते हुए पुण्य-पाप रहित शुद्ध अवस्था की ओर लक्ष्य बनाये रखता है। इसीलिए आचार्य देव बार-बार कहते हैं-''**णाणं पयासं**'' ज्ञान का प्रकाश करो।

''भेद विज्ञान साबुन भयो, समरस निरमल नीर।
धोबी अन्तर आतमा, धोवे निज गुण चीर।।''

श्रुताभ्यास के बिना सम्यक् तप नहीं

सुदणाणब्भास जो ण कुणइ सम्मं ण होइ तवयरण।
कुव्वंतो मूढमई संसार-सुहाणु-रत्तो सो।।12।।

अर्थ-जो जीव शास्त्रों का अध्ययन नहीं करता, उसका समीचीन तप नहीं होता। शास्त्राभ्यास के बिना तपश्चरण करता हुआ अज्ञानी संसार के सुखों में ही अनुरक्त है।

शास्त्रज्ञान जितना होगा उतना अधिक स्पष्ट ज्ञान होगा। जितना स्पष्ट ज्ञान होगा उतना ही निर्मल तपश्चरण होगा। जिनवाणी में प्रसिद्ध चारों ही अनुयोगों का कथन हर एक मुमुक्षु को जानना चाहिये। जिनवाणी के पढ़ते रहने से एक मूढ़ व्यक्ति भी ज्ञानी हो जाता है। स्वाध्याय के द्वारा आत्मा में ज्ञान प्रकट होता है, कषायभाव घटता है, संसार से ममत्व हटता है, मोक्ष भाव से प्रेम जगता है। अतः निरन्तर अभ्यास से मिथ्यात्व कर्म व अनंतानुबंधी कषाय का उपशम हो जाता है और सम्यग्दर्शन पैदा हो जाता है। श्री अमृतचन्द्राचार्य ने श्री समयसार कलश में कहा है-

उभय-नय-विरोध-ध्वंसिनि स्यात्पदांके जिन-वचसि रमन्ते ये स्वयं वांतमोहाः।
सपदि समयसारं ते परंज्योति-रुच्चै-रनवम-नयपक्षाक्षुण्ण-मीक्षन्त एव।।4।।

निश्चयनय और व्यवहारनय के विरोध को मेटने वाली स्याद्वाद से लक्षित जिनवाणी में जो रमते है वे स्वयं मोह को वमन कर शीघ्र ही परमज्ञान ज्योतिमय शुद्धात्मा को जो नया नहीं है और न किसी नय के पक्ष से खंडन किया जा सकता है, देखते ही है।

श्रुताभ्यास मुनिधर्म व श्रावक धर्म दोनों के लिए उपकारी है। तपश्चरण में समीचीनता लाता है, मन को केन्द्रित करता है। संसार-सुखों से उदासीन बाता है।

मुनिराज तत्त्वचिंतक होते हैं

तच्च-वियारण-सीलो, मोक्ख-पहा-राहणा-सहाव-जुदो।
अणव-वरयं धम्म-कहा-पसंगओ होइ मुणिराओ।।93।।

अर्थ-जो तत्त्वों के चिन्तन स्वभाव वाले हैं, मोक्षपथ की आराधना स्वभाव से

युक्त है और निरन्तर धर्म-कथा में दत्तचित्त हो लगे रहते हैं वे मुनिराज होते हैं।

जो तत्त्वार्थश्रद्धानरूप व्यवहार सम्यक्त्व के द्वारा उत्पन्न निश्चय सम्यग्दर्शन में परिणमन करने से दर्शन-मोह को नाश कर चुके हैं, निर्दोष परमात्मा से कहे हुए परमागम के अभ्यास से उपाधि से रहित स्वसंवेदनज्ञान की चतुराई से आगमज्ञान में प्रवीण है, व्रत, समिति, गुप्ति आदि बाहरी चारित्र के साधन के वश से अपने शुद्धात्मा में परिणमनरूप वीतराग चारित्र में भले प्रकार उद्यमी हैं तथा मोक्षरूप महापुरुषार्थ को साधने के कारण महात्मा हैं वे ही मुनिराज हैं। वे मुनिराज नित्य दर्शन-ज्ञान-चारित्र व तपाराधना में रत रहते हैं, विकथाओं से रहित धर्मकथा से ही संबंध रखते हैं। वे ही मुनिराज मोक्ष-पथ की आराधना के पथिक है।

ज्ञानाभ्यास से मुक्ति

णाणेण झाण सिद्धि, झाणादो सव्व-कम्म-णिज्जरणं।
णिज्जरण-फलं मोक्खं, णाणब्भासं तदो कुज्जा।।150।।

अर्थ-ज्ञान से ध्यान की सिद्धि होती है, ध्यान से अष्टकर्मों की निर्जरा होती है, निर्जरा का फल मोक्ष की प्राप्ति है अतः भव्यात्माओं को ध्यान को सिद्ध करने वाले ज्ञानाभ्यास करना चाहिये।

यहाँ आचार्य देव का तात्पर्य है कि-जिस प्रकार सुहागा और नमक के लेप से युक्त कर स्वर्ण शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञानरूपी निर्मल जल से यह जीव भी शुद्ध होता है। मोह उदय से यह जीव अनादिकाल से अज्ञान मल से मलीन हो रहा है, उसी मलिनता के कारण यह अशुद्ध होकर संसार-सागर में मज्जनोन्मज्जन कर रहा है। इसलिये ज्ञान से मोह की धारा को दूरकर ज्ञान को निर्मल बनाने का पुरुषार्थ करना चाहिये। ज्ञान की निर्मलता से ध्यान की विशुद्धि, ध्यान की विशुद्धि से कर्मों की निर्जरा और कर्मनिर्जरा से मुक्ति की प्राप्ति होती है।

जं अण्णाणी कम्मं खवेदि भवसयसहस्स कोडीहिं।
तं णाणी तिहि गुत्तो खवेदि अत्तोमुहुत्तमेत्तेण।।107।।
छट-ठट्ठ-मदसमदुबालसेहि अण्णाणियस्स जा सोही।
तत्तो बहुगुणदरिया होज्ज हु जिमिदस्य णाणिस्स।।108।। भ.आ.

1. सम्यग्ज्ञान से रहित अज्ञानी जिस कर्म को लाख-करोड़ भवों में नष्ट करता है/क्षय करता है, उस कर्म को सम्यग्ज्ञानी तीन गुप्तियों से युक्त हुआ अन्तर्मुहूर्त में क्षय करता है।

2. अज्ञानी के दो-चार-पाँच-छह-आठ आदि उपवास करने में जितनी विशुद्धि/कर्मनिर्जरा होती है उससे बहुगुणी विशुद्धि/निर्जरा भोजन करते हुए ज्ञानी के होती है।

श्रुत की भावना से उपलब्धि

कुसलस्स तवो णिवुणस्स संजमो समपरस्स वेरग्गो।
सुदभावेण तत्तिय तह्मा सुदभावणं कुणह।।151।।

अर्थ-जो आत्मा के स्वरूप को जानने में कुशल हैं, उनके तप होता है, जो आत्म स्वरूप को जानने में निपुण है उनके संयम होता है, समभावी के वैराग्य होता है और श्रुतज्ञान के अभ्यास से तपश्चरण, संयम तथा वैराग्य तीनों की प्राप्ति होती है, अतः श्रुत की भावना/श्रुत का अभ्यास करना चाहिये।

इस पंचम काल में साक्षात् केवली भगवान् नहीं है, श्रुतकेवली भी नहीं हैं। मुनिराज जो आगम के ज्ञाता हैं, श्रुताभ्यासी हैं वे भी सुलभ नहीं हैं, ऐसे समय में एकमात्र माँ जिनवाणी ही हमारी मार्ग-दर्शिका, पथ-प्रदर्शिका है। आचार्य देव ने इसीलिये लिखा-''**आगमचक्खू साहू**'' ''**आगम तीजा नयन बताया।**'' साधु के नेत्र आगम हैं। कहा भी है-

अल्पायुषा-मल्पधिया-मिदानीं कुतः समस्त-श्रुत पाठ शक्तिः।
तदत्रमुक्तिं प्रतिबीज मात्र-मभ्यस्तता-मात्महितं प्रयत्वात्।।126।।प.नं.।।

भव्यात्माओं! इस पंचम काल में आयु अल्प है, ज्ञान निरन्तर क्षीण हो रहा है। अल्पायु तथा क्षयोपशम की हीनता के कारण पूर्णश्रुत का अभ्यास नहीं कर सकते हैं। अतः मोक्षाभिलाषी पुरुषों को मुक्ति प्रदायक आत्म-हितकारी श्रुत का अभ्यास तो प्रयत्नपूर्वक करना ही चाहिये। क्योंकि श्रुताभ्यास के बिना कुशलता, निपुणता, समताभावी रूप में निखार नहीं आ पाता। एक श्रुताभ्यासी के पास कुशलता, निपुणता, समरसता सभी होने से वह ज्ञान-तप-वैराग्य और पूर्ण संयम की प्राप्ति कर मुक्ति का भाजन बनता है।

ख्याति पूजादि रहित तप-त्याग से पुण्य से मोक्ष तक की प्राप्ति

-आ. कनकनन्दी

(राग : तुम दिल की धड़कन....., सायोनारा.....)

कषाय सह ख्याति पूजा सहित, तप-त्याग से न मिलता मोक्ष।

विष त्याग बिन काँचली त्याग से, विषाक्त सर्प न होता निर्विष।। (1)

मोह-क्षोभ त्याग से होता है मोक्ष, प्रशस्त भाव से होता सुपुण्य।
कषाय से होता है पापों का बंध, ख्याति पूजा की इच्छा न भाव विशुद्धि।। (2)

अहंकार से होती ख्याति पूजा की इच्छा, लाभ की इच्छा है लोभ कषाय।
इसी से आत्मा तो होता है मलिन, जिससे होता है पाप बन्धन।। (3)

किसी की कीर्ति भी न होती है स्थिर, नाम किसी का भी न होता अमर।
अनन्त भी हो गये हैं महान् जन, नहीं है असंख्य नाम विद्यमान।। (4)

प्रशंसनीय काम (तो) सदा करणीय, सद्गुण प्रशंसा भी सदा विधेय।
इसी से आत्मिक भी विकास होता, सुपुण्य से वैभव सुख मिलता।। (5)

निरपेक्ष व निर्मल भावों से, संवर-निर्जरा सह मोक्ष मिलता।
यह है परम आध्यात्मिक रहस्य, मोक्ष प्राप्ति हेतु 'कनक' सदा प्रयास।। (6)

नन्दौड़, दिनांक 30.08.2015, अपराह्न 5.47

सन्दर्भ-

अशुद्ध भाव से किया हुआ त्याग कर्मक्षय का कारण नहीं

ण हि णिरवेक्खो चागो ण हवदि भिक्खुस्स आसयविसुद्धी।
अविसुद्धस्स य चित्ते कहंणु कम्मक्खओ विहिदो।। (220) प्र.सार

If there is no renunciation (absolutely) free from (any) expectation, the monk cannot have the purication of mind; how can he effect the destruction of Karmas, when he is impure in mind?

अब कहते हैं कि जो भावों की शुद्धिपूर्वक बाहरी परिग्रह का त्याग किया जावे तो अभ्यंतर परिग्रह का ही त्याग किया गया।

(णिरवेक्खो) अपेक्षा रहित (चागो) त्याग (ण हि) यदि न होवे तो (भिक्खुस्स) साधु के (आसयविसोही ण हवदि) आशय या चित्त की विशुद्धि नहीं होवे। (य) तथा (अविसुद्ध चित्ते) अशुद्ध मन के होने पर (कहं णु) किस तरह (कम्मक्खओ) कर्मों का क्षय (विहियो) उचित हो अर्थात् न हो। यदि साधु सर्वथा ममता या इच्छा त्यागकर सर्व परिग्रह त्याग न करे किन्तु यह इच्छा रखे कि कुछ भी वस्त्र या पात्र आदि रख लेने चाहिए, तो अपेक्षा सहित परिणामों के होने पर उस साधु के चित्त की शुद्धि नहीं हो सकती है। तब जिस साधु का चित्त शुद्धात्मा की भावना रूप शुद्धि से रहित होगा

उस साधु के कर्मों का क्षय होना किस तरह उचित होगा अर्थात् उसके कर्मों का नाश नहीं हो सकता है।

इस कथन से यह भाव प्रगट किया गया है कि जैसे बाहर का तुष रहते हुए चावल के भीतर की शुद्धि नहीं की जा सकती है। इसी तरह विद्यमान परिग्रह में या अविद्यमान परिग्रह में जो अभिलाषा है, उसके होते हुए निर्मल शुद्धात्मा के अनुभव को करने वाली चित्त की शुद्धि नहीं की जा सकती है। जब विशेष वैराग्य के होने पर सब परिग्रह का त्याग होगा तब भावों की शुद्धि अवश्य होगी ही परन्तु यदि प्रसिद्धि पूजा या लाभ के लिए त्याग किया जायेगा तो चित्त की शुद्धि नहीं होगी।

समीक्षा–आचार्यश्री ने इस गाथा में कौनसा बहिरंग त्याग यथार्थ है और कौनसा बहिरंग त्याग अयथार्थ है इसका प्रतिपादन किया है। जो बहिरंग त्याग अंतरंग त्यागपूर्वक होता है वह बहिरंग त्याग यथार्थ त्याग है और जो बहिरंग त्याग अंतरंग त्यागपूर्वक नहीं होता उसे बहिरंग त्याग नहीं कहते हैं जो अंतरंग त्यागी है उसका बहिरंग त्याग अवश्य होगा ही। अंतरंग त्याग का बहिरंग त्याग के साथ अविनाभावी संबंध है परन्तु बहिरंग त्याग का अंतरंग त्याग के साथ अविनाभावी संबंध नहीं है। जिस प्रकार जहाँ-जहाँ धूम है वहाँ अग्नि होगी ही पर जहाँ अग्नि है वहाँ धूम हो सकती है और नहीं भी हो सकती है उसी प्रकार अंतरंग में जो छठा, सातवाँ गुणस्थानवर्ती है वह बहिरंग में भी संपूर्ण परिग्रह त्यागी अवश्य होगा। परन्तु जो बाह्य में नग्न है वह अंतरंग में छठा, सातवाँ गुणस्थानवर्ती हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। जिस प्रकार नारकी, पशु, कुछ पगले बच्चे बहिरंग से नंगे रहते हैं पर अंतरंग से निर्ग्रंथ नहीं रहते हैं इसी प्रकार भव्य एवं मिथ्यादृष्टि बहिरंग से त्यागी होते हुए भी अंतरंग में ग्रंथि (परिग्रह) से युक्त रहते हैं यह निर्ग्रंथता मोक्षमार्ग के लिए अकिंचित्कर है। कुंदकुंद देव ने अष्ट पाहुड़ (भाव प्राभृत) में कहा भी है-

भावविसुद्धिणिमित्तं बाहिरगंथस्स कीरए चाओ।
बाहिरचाओ विहलो अब्भंतरगंथजुत्तस्स।। (3) (अष्टपाहुड़ पृ. 249)

भावों की विशुद्धि के लिए बाह्य परिग्रह त्याग किया जाता है। जो अंतरंग परिग्रह से सहित है उसका बाह्य त्याग निष्फल है।

परिणाममि असुद्धे गंथे मुच्चेइ बाहरे य जई।
बाहिरगंथच्चाओ भावविहूणस्स किं कुणइ।। (5)

भाव के अशुद्ध रहते हुए यदि कोई बाह्य परिग्रह का त्याग करता है तो उस

भाव विहीन मनुष्य का बाह्य परिग्रह त्याग क्या कर देगा? अर्थात् कुछ नहीं।

जाणहि भावं पढमं किं ते लिंगेण भावरहिएण।
पंथिय सिवउरिपंथं जिणउवइट्ठं पयत्तेण।। (6)

भाव को प्रमुख जानकर भावरहित लिंग से तुझे क्या प्रयोजन है उससे तेरा कौनसा कार्य सिद्ध होने वाला है? हे पथिक! मोक्षनगर का मार्ग जिनेन्द्र भगवान् ने बड़े प्रयत्न से बताया है।

भावरहिएण सउरिस अणाइकालं अणंतसंसारे।
गहिउज्झियाइं बहुसो बाहिरनिग्गंथरूवाइं।। (7)

हे सत्पुरुष! तूने भाव रहित होकर अनादि काल से इस अनंत संसार में बहुत बार बाह्य निर्ग्रंथ मुद्रा को ग्रहण किया तथा छोड़ा है। अंतरंग त्याग बिना बहिरंग त्याग इसलिये निष्फल है कि अंतरंग परिणाम से ही आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा एवं मोक्ष होता है। अतः परिणाम विशुद्धि के बिना बहिरंग त्याग मोक्षमार्ग के लिए अकिंचित्कर है। इतना ही नहीं, यदि प्रसिद्धि, ख्याति, अहंकार, लाभ आदि दूषित भावनाओं से प्रेरित होकर कोई त्याग करता है तो उसका त्याग भी उसी प्रकार निरर्थक है जिस प्रकार विषधर सर्प काँचली तो त्याग कर लेता है परन्तु विष त्याग नहीं करता है। कुंदकुंद देव ने समसार में कहा भी है-

सेवंतोवि ण सेवदि असेवमाणोवि सेवगो कोवि।
पगरणचेट्ठा कस्सवि ण य पायरणोत्ति सो होदि।। (206)

(समयसार पृ. 200)

कोई भोगों को सेवता हुआ भी सेवन नहीं करता। (जैसे अभया रानी के चंगुल में फँसे हुए सेठ सुदर्शन के समान विवशता वश किसी विषय को भोगता हुआ-सा होकर भी वह उसका भोगने वाला नहीं होता) दूसरा कोई नहीं सेवन करता हुआ भी उसका सेवन करने वाला होता है। जैसे कि किसी विवाह में जिसका विवाह होता है वह उस विवाह का कुछ भी काम नहीं करता किन्तु उस विवाह में आये हुए पाहुने आदिक-जिनका विवाह नहीं होना है उस विवाह का सब काम करते हैं।

ज्ञानी जीव सब ही द्रव्यों के प्रति होने वाले राग को छोड़ देता है अतः वह ज्ञानावरणादि कर्म सहित होकर भी नवीन कर्मरज से लिप्त नहीं होता। जैसे कि

कीचड़ में पड़ा हुआ सोना जंग नहीं खाता है किन्तु अज्ञानी जीव सभी द्रव्यों में राग रखता है इसलिये कर्मों के फंदे में फँसकर नित्य नये कर्मबंध किया करता है जैसे कि लोहा कीचड़ में पड़ने पर जंग खा जाया करता है।

सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो वि फासेदि य।
धम्मं भोगणिमित्तं ण दु सो कम्मक्खयणिमित्तं।। (293)

सद्दहदि य श्रद्धान करता है, उसे पत्तेदि य ज्ञान के द्वारा प्रतीति में लाता है उसकी जानकारी प्राप्त करता है रोचेदि य विशेष रूप से विश्वास लाता है तह पुणोवि फासेदि य-तथा उसे छूता है अर्थात् आचरण में लाता है। कौनसे धर्म को लाता है? '**किं धम्मं भोगणिमित्तम्**' अहमिंद्रादि का कारण होने से जो धर्म भोगों का विशेष रूप से साधन है उस पुण्यरूप धर्म को भोगों की अभिलाषा से ही धारण करता है 'ण दु सो कम्मखय णिमित्त' किन्तु शुद्धात्मा की संवित्ति है लक्षण जिसका ऐसा जो निश्चय धर्म जो कि कर्मों के नाश करने में निमित्त होता है उस धर्म को नहीं मानता नहीं जानता आदि।

पूज्यपाद स्वामी ने कहा है कि ''मूढ़ व्यक्ति अंतरंग परिशुद्धि के बिना, त्याग के बिना, परिमार्जन के बिना, केवल बाह्य त्याग, बाह्य शुद्धि को ही महत्व देता है वह बाह्य त्यागादि में ही संतुष्टि कर लेता है। बहिरंग त्याग अंतरंग त्याग के लिए अंतरंग विशुद्धि के लिए होना चाहिए था परंतु उसका बाह्य त्याग अंतरंग कलुषता के लिए, वृद्धि के लिए, अहंकार के लिए बन जाता है ऐसे त्याग से न शारीरिक स्वास्थ्य मिलता है न मानसिक न आत्मिक न इहलोक सुख न परलोक सुख।''

अचेतनमिदं दृश्यमदृश्यं चेतनं ततः।
क्व रूष्यामि क्व तुष्यामि मध्यस्थोऽहं भवाम्यतः।। (46) समाधितंत्र पृ.68

अंतरात्मा को अपने अनाद्यविद्या रूप भ्रांत संस्कारों पर विजय प्राप्त करने के लिए सदा ही यह विचार करते रहना चाहिए कि जिन पदार्थों को मैं इन्द्रियों के द्वारा देख रहा हूँ वे सब तो जड़ है चेतना रहित है उन पर रोष-तोष करना व्यर्थ है-वे उसे कुछ समझ नहीं सकते-और जो चैतन्य पदार्थ है वे मुझे दिखाई नहीं पड़ते वे मेरे रोष-तोष का विषय ही नहीं हो सकते। अतः मुझे किसी से राग-द्वेष न रखकर मध्यस्थ भाव का ही अवलम्बन लेना चाहिए।

बहिस्तुष्यति मूढात्मा पिहितज्योतिरन्तरे।

तुष्यत्यन्तः प्रबुद्धात्मा बहिर्व्यावृत कौतुकः।। (60)

मूढात्मा और प्रबुद्धात्मा की प्रवृत्ति में बड़ा अंतर होता है। मूढात्मा मोहोदय के वश महाअविवेकी होता हुआ समझाने पर भी नहीं समझता और बाह्य विषयों में ही संतोष मानता हुआ फँसा रहता है। प्रत्युत इसके, प्रबुद्धात्मा को अपने आत्म स्वरूप में लीन रहने में ही आनंद आता है और इसी से वह बाह्य विषयों से अपने इन्द्रिय व्यापार को हटाकर प्रायः उदासीन रहता है।

यत्रैवाहितधीः पुंसः श्रद्धा तत्रैव जायते।
यत्रैव जायते श्रद्धा चित्तं तत्रेव लीयते।। (95)

जिस विषय में किसी मनुष्य की बुद्धि संलग्न होती है-खूब सावधान रहती है-उसी में आसक्ति बढ़कर उसकी श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है और जहाँ श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है वही चित्त लीन रहता है चित्त की लीनता ही सुप्त और उन्मत्त-जैसी अवस्थाओं में मनुष्य को उस विषय की ओर से हटने नहीं देती-सोते में भी वह उसी के स्वप्न देखता है और पागल होकर भी उसी की बातें किया करता हैं।

यत्रानाहितधीः पुंसः श्रद्धा तस्मान्निवर्तते।
यस्मान्निवर्तते श्रद्धा कुतश्चितस्य तल्लयः।। (96)

जिस विषय में किसी मनुष्य की बुद्धि संलग्न नहीं होती भले प्रकार सावधान नहीं रहती-उसमें अनासक्ति बढ़कर श्रद्धा उठ जाती है और जहाँ से श्रद्धा उठ जाती है वहाँ चित्त की लीनता नहीं हो सकती। अतः किसी विषय में आसक्ति न होने का रहस्य बुद्धि को उस विषय की ओर अधिक न लगाना ही है-बुद्धि का जितना कम व्यापार उस तरफ किया जायेगा और उसे अहितकारी समझकर जितना कम योग दिया जायेगा उतना ही उस विषय से अनासक्ति होती जायेगी और फिर सुप्त तथा उन्मत्त अवस्था हो जाने पर भी उस और चित्त की वृत्ति नहीं जायेगी।

उत्सर्ग रूप से बाह्य धन, वैभव के साथ-साथ शरीर भी परिग्रह होने के कारण त्यजनीय है तथापि प्राथमिक अवस्था में ''शरीर माध्यम् खलु-धर्म साधनम्'' अर्थात् शरीर के माध्यम से धर्म की साधना होती है इसलिये शरीर को धर्म के साधन में एक उपकरण मात्र मानना चाहिए उसी प्रकार पिच्छी, कमंडल, शास्त्रादि भी उपकरण रूप में ग्राह्य है। हीन संहनन की अपेक्षा सूखी घास, घास की चटाई, फलक (पाटा) आदि भी ग्राह्य है, परंतु इसको छोड़कर अनावश्यक राग-वर्धक वस्त्र, गद्दी तकिया, पात्र, यान, वाहन आदि

समस्त परिग्रह त्यजनीय है क्योंकि इससे राग बढ़ता है, परिग्रह संबंधी दोष उत्पन्न होते हैं, संकल्प, विकल्प की परंपरा प्रारंभ हो जाती है, आरंभ-परिग्रह जनित दोष भी लगते है। साधुओं को मंदिर, मठ, संस्था, धर्मशाला, मूर्ति, पंचकल्याण, प्रतिष्ठा, पूजा, विधान, रथयात्रा आदि के लिए भी न धन की याचना करनी चाहिए, न ग्रहण करना चाहिए, न संचय करना चाहिए। इसी प्रकार साधु संघ की व्यवस्था के लिए भी साधु को धन-संपत्ति का संग्रह करना, याचना करना, चंदा इकट्ठा करना सर्वथा वर्जनीय है। भाव संग्रह में भी परिग्रह रखना जैन धर्म के बाह्य एवं साधुता के विरुद्ध कहा है।

सन्दर्भ-रक्षाबंधन पर्व में धर्म-रक्षा हेतु

धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त विकृतियाँ

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : जब जीरो दिया मेरे भारत ने....., तुम दिल की धड़कन.....)

आज क्या हुआ उस/(मेरे) भारत को...जो कभी विश्वगुरु कहलाया...
आज धर्म से शिक्षा-राजनीति-न्याय...व्यापार सेवा में नैतिक पतन हुआ...(स्थायी)...
आज कहाँ गया आध्यात्मिक ज्ञान...नैतिकता-सदाचार-आत्म कल्याण...
दान दया सेवा व परोपकार...श्रद्धा-प्रज्ञा सह आत्म संयम...
धर्म में भी आज ये सब नहीं है...ढोंग-पाखण्ड-आडम्बर मचा है...
धन-जन-मान व स्वार्थ निष्ठा से...दिखावा का धर्म कर रहे हैं...(1)...
पंथ-मत-जाति या प्रसिद्धि से...चकाचौंध या चमत्कार से...
खाना-पीना व रहना सोना...नाचना गाना व मनोरंजन से...
गाजा बाजा व टी.वी. प्रोग्राम से...अश्लील चुटकुले के कवि सम्मेलन से...
नाम ख्याति व सम्मान भीड़ से/(में)...आवेशित हो ढोंग धर्म कर रहे...(2)...
नेता-अभिनेता-खिलाड़ी-धनी से/(के)...अंधानुकरण से धर्म कर रहे...
सांसरिक मनोकामना पूर्ति हेतु...चोर व ठगी समधर्म कर रहे...
पर्व महोत्सव व तीर्थयात्रा में...कथावाचन-सत्संग या प्रवचन में...
पूजा-विधान-पञ्च कल्याणक में...कमोवेश ऐसा ही धर्म कर रहे...(3)...
भक्त-[1]भगवान् या गुरु-शिष्य आदि...ऐसा ही प्रायः सभी कर रहे...
धार्मिक क्षेत्र में ही यदि ऐसा हो वे...अन्य क्षेत्र का अनुमान सहज होता...
समतामय आत्म विशुद्धि धर्म में...तथाहि साधु-साध्वी-कार्यक्रम में...

नहीं लेते रूचि व न लेते लाभ...नहीं करते परिमार्जन कुभाव...(4)...
भो भारतीय! पहिले नैतिक बनो...फिर बनो आध्यात्मिक धार्मिक...
आत्मविशुद्धि से आत्म विकास करो...इसी हेतु काव्य लिखा है 'कनक'...(5)...
नन्दौड़, दिनांक 29.08.2015, मध्याह्न 1.10
(भारत के धर्म क्षेत्र में भी व्याप्त विकृतियों से पीड़ित व द्रवित होकर इस कविता की रचना हुई। इन विकृतियों को त्याग करना ही यथार्थ से रक्षाबंधन पर्व है।)
1. पंचमकाल के तथाकथित भगवान्।

ईर्ष्यालु मानव जाति

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा.....)
बड़ी ही ईर्ष्यालु है मानव जाति...स्वयं को ईर्ष्या से जलाती रहती...
अन्य जले या नहीं भी जले...ईर्ष्याग्नि से स्वयं को स्वयं जलाती...(स्थायी)...
अन्य की प्रगति से ईर्ष्या करती...स्वयं जलती व दुःखी भी होती...
पाप कर्मों को भी खूब बांधती...इह-परलोक में दुःखी भी होती...
ईर्ष्या से घृणा-द्वेष-कलह करती...वाद-विवाद करे फूट डालती...
आक्रमण युद्ध व हत्या करती...इह-परलोक में दुर्दशा भोगती...(1)...
ईर्ष्या में अहंकार व क्रोध भी होता...माया सहित लोभ भी होता...
अनुदारता-कट्टरता व अरति होती...सभी के मिश्रण से ईर्ष्याग्नि जलती...
संकल्प-विकल्प व संक्लेश होता...विवेक नाश से अविवेक प्रगटता...
जिससे मानव करता उक्त अनर्थ...अप्रयोजनभूत पाप अनेक...(2)...
दूसरों की प्रगति व प्रशंसा ख्याति...सत्ता-संपत्ति व बुद्धि-प्रसिद्धि...
तप-त्याग सेवा व दान प्रवृत्ति...सहन न करती मानव जाति...
इसी से उत्तेजना व जलन बढ़ती...इन्द्रियों की शक्ति व बुद्धि घटती...
लीवर की खराबी व पथरी (अल्सर) होती...तन-मन-आत्मा में विकृति आती...(3)...
जिससे सर्वांगीण विकास न होता...दयनीय रूप से जीवन बीतता...
जो मानव इससे परे हो जाता...मानव से महामानव भगवान् होता...
प्रार्थना व पूजा में गुणगान करते...गुण-गुणी से ईर्ष्या भाव रखते...
यह है मानवों की नीच प्रवृत्ति...मुँह में राम नाम बगल में छूरी वृत्ति...(4)...

आगम व अनुभव से यह मैं लिखा/(पाया)...मनोविज्ञानों से यह मैं सीखा...
गुणग्राही गुणपूजक काम मैं पाया...'कनकनन्दी' को आध्यात्मिक ही भाया...(5)...

नन्दौड़, दिनांक 09.08.2015, रात्रि 8.15
(यह कविता मणिभद्र, दीपेश, खुशपाल के कारण बनी।)

समीक्षात्मक दोहावली

-आ. कनकनन्दी

आहार निद्रा भय मैथुन, मानव कीट में समान।
नैतिक आचरण आत्मज्ञान, से मानव कीट से महान्।। श्री कनक...(1)

धर्म करत संसार सुख, धर्म करत निर्वाण।
धर्म पंथ साधे बिना, नर पतंग समान।। श्री कनक...(2)

निन्दक नियरे न राखिये, न बनिये (भी) निंदक।
निन्दा तो ईर्ष्या द्वेष घृणा, बनिये गुण-प्रशंसक।। श्री कनक...(3)

बुरा ही न देखो भला भी देखो, बनो हे! सत्यग्राही।
स्व-पर के गुण-दोषों से, शिक्षा लो हे! गुणग्राही।। श्री कनक...(4)

जो कुछ होता न अच्छा होता, (अन्याय) अत्याचार पापाचार।
सच्चा-अच्छा (ही) होना अच्छा, बुरा से लो शिक्षा प्रचुर।। श्री कनक...(5)

हितकर ही वचन सुनो, सुनो न सभी की बात।
मनमाना कभी न करो, करो स्व-पर-हित काम।। श्री कनक...(6)

''यथा राजा तथा प्रजा'', सर्वथा सत्य न होय।
रामराज्य में भी थे, (सीता) अपवादकर दुष्ट।। श्री कनक...(7)

सर्वथा सत्य न होता कटु, सत्य तो हित-मित-प्रिय।
सत्य ही शिव सुन्दर है, सत्य में सभी गर्भित (प्रतिष्ठित)।। श्री कनक...(8)

''करे कोई भरे कोई'', यह न कर्म सिद्धान्त।
नवकोटि से कर्म फल, कर्त्ता को मिले (यह) सत्य।। श्री कनक...(9)

''ओल्ड इज गोल्ड'' यह नहीं, है सवर्था सत्य।
हिंसा झूठ चोरी कुशील (आदि), ओल्ड पर नहीं गोल्ड।। श्री कनक...(10)

''जो डर गया वह मर गया'', नहीं है सर्वथा सत्य।
पाप से भयभीत होकर, पाप त्यागना यथार्थ।। श्री कनक...(11)

समरथ को भी दोष लगे, यदि वे करते पाप।
पाप कर्म पक्षपात न करे, समरथ या असमरथ।। श्री कनक...(12)

आकाश पातला के प्रदेश, नहीं होते हैं एक।
आकाश पाताल सिकुड़कर, नहीं होता प्रदेश एक।। श्री कनक...(13)

आँखों देखा झूठ भी होता, कान सुना (भी) होता सत्य।
मृगमरीचिका पानी न होता, दिव्य ध्वनि होती सत्य।। श्री कनक...(14)

श्रद्धा-प्रज्ञा-सर्वज्ञ वचन से, करो है तत्त्व निर्णय।
इसी हेतु ही 'कनकनन्दी', किया ये सब वर्णन।। श्री कनक...(15)

नन्दौड़, दिनांक 30.08.2015, मध्याह्न 2.38

अनुभव दोहावली

-आचार्य कनकनन्दी

कामी-क्रोधी लालची...अविवेकी मोही जो होय...
सत्य-तथ्य को न जानता/(मानता)...ऐसा सर्वत्र होय...कनक ऐसा...

स्व-गुण-दोषों को जो न जाने...अन्य के (भी) जान न पाय...
जो दीप स्व-प्रकाशी न हो...अन्य न प्रकाशित होय...श्री कनक...

दीन-हीन-अहंकार त्यज...जो स्वाभिमानी होय...
गलत काम न वह करे...स्वाभिमानी गुणज्ञ होय...श्री कनक...

सत्य जो न जान पाता...मिथ्या जान न पाय...
सत्य के प्रतिपक्षी मिथ्या को...सत्य बिन जाना न जाय...श्री कनक...

जो दीन-हीन-अयोग्य होए...(वह) अहंकारी-ढोंगी होय...
जैसे खोखली ढोल से...अधिक शब्द होय...श्री कनक...

भेड़-भेड़िया चाल में...चलते अज्ञानी-मोही...
जन्मान्ध अन्ध की यथा...गति अन्य द्वारा होई...श्री कनक...

सत्य ज्ञान/(बोध) न हो भीड़ से/(में)...भीड़ में सत्य छिप जाय...

यथा लाखों को भीड़ में...भटका स्वजन न पाय...श्री कनक...

सत्य-समता-शांति से...सज्जन आगे बढ़ जाय...
यथा जल/(नदी) स्रोत बाधा को...चीर आगे बढ़ जाय...श्री कनक...

दुष्ट-दुर्जन-मोही से...महान् जन भय न खाय...
यथा घनघोरतम से...प्रकाश भय न खाय...श्री कनक...

अज्ञानी-मोही-स्वार्थीजन...जाने न महान्जन...
जन्मान्ध व्यक्ति यथा...देख न पाये सूर्य...श्री कनक...

आत्मज्ञान ही अमृतमय/(परम ज्ञान)...अजर-अमर पद होय...
आत्मज्ञान हीन अन्य ज्ञान...मृतक देह सम होय...श्री कनक...

सम्यक् आहार-विहार व...विचार निहार निवास...
प्राणायाम-योगासन...ध्यान में स्वास्थ्य निवास...श्री कनक...

अहंकार-ममकार त्यज...करो हे! स्वाभिमान...
स्वाभिमान से सोऽहं...जिससे अहं मय बन...श्री कनक...

स्व-आत्म ज्ञान हेतु...चाहिये परमात्म ज्ञान...
बनाने आत्मा को परमात्मा...परमात्मा सम गुण...श्री कनक...

धर्म-स्वरूप जानने हेतु...चाहिये अधर्म का ज्ञान...
बनने हेतु धर्ममय...करो अधर्म का त्याग...श्री कनक...

आत्मा ही हिंसा-अहिंसामय...होता है निश्चय से...
अशुद्ध आत्मा ही हिंसा...शुद्ध आत्मा अहिंसा...श्री कनक...

आत्मा ही धर्म-अधर्ममय...होता है निश्चय से...
शुद्ध आत्मा ही धर्म...अशुद्ध आत्मा ही अधर्म...श्री कनक...

जीव मरे या नहीं मरे...संक्लेश से हिंसा होय...
पाँचों पाप चारों कषाय...प्रमाद भी हिंसा होय...श्री कनक...

समता-शांति-आत्मविश्वास...ज्ञान व सदाचरण...
यह ही धर्म का मूल है...अन्य सभी साधन...श्री कनक...

प्रायः धार्मिक रूढ़ियों को तो...मानते धार्मिक जन...
आत्मविशुद्धि सत्य समता से...रहित संकीर्णजन...श्री कनक...

अनुभव-आचरण बिन...ज्ञानी भी अज्ञानी सम...
पौष्टिक भी भोजन हजम...बिन होता विष सम...श्री कनक...

दया दान सेवा बिना...व्यवहार धर्म न होय...
आत्मविश्वास ज्ञान चरण बिन...निश्चय धर्म न होय...श्री कनक...

मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ...भावना होती परम...
ईर्ष्या द्वेष घृणा तृष्णा...भावना होती अधम...श्री कनक...

आत्मविश्वास-आत्मविश्लेषण से...होता आत्म-विकास...
पर निन्दा पर प्रपञ्च से...होता आत्म-विनाश...श्री कनक...

आत्मिक शक्ति विकास से...होता परम विकास...
आत्मिक शक्ति विकृति से...होता परम विनाश...श्री कनक...

नन्दौड़, दिनांक 28.08.2015, अपराह्न 4.30

जैन धर्म की विशेषता : आत्मा ही बनता है परमात्मा

-आचार्य कनकनन्दी

(राग : आत्मशक्ति.....)

कितना पावन कितना महान्, जैन धर्म है मेरा।
आत्मा को परमात्मा बनाने का, उपदेश देने वाला।। (स्थायी)

आत्मा ही है परमात्मा, कहता है जैन धर्म।
निश्चयनय से शुद्ध दृष्टि से, वर्णन करे आत्म धर्म।।

'सव्वेसुद्धा हु सुद्धणया' से, हर जीव है शुद्ध।
चौरासी लाख योनि मध्य के, हर जीव है शुद्ध।। (1)

कर्म के कारण जीवों के मध्य में, होता है भेद-प्रभेद।
यथा लाल-पीला-काला रंग, मिश्रित पानी में भेद-प्रभेद।।

हर जीव है स्वयंभू सनातन, अविनाशी व अविभागी।
अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय, सच्चिदानन्द स्वभावी।। (2)

हर जीव स्वयं का ही कर्त्ता-धर्त्ता, स्वतंत्र व स्वयं पूर्ण।
आत्मपतन व आत्मविकास, स्वयं ही है उपादान।।

आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र द्वारा, करता स्वयं का विकास।
इसी से विपरीत आत्म अविश्वास, आदि से करता स्व विनाश।। (3)

इसी हेतु बाह्य द्रव्य क्षेत्र काल, आदि भी होते निमित्त।
यथा आरोहण व अवतरण हेतु, निशेणी (सोपान) होती निमित्त।।

आत्म विकास द्वारा शुद्ध-बुद्ध बन, बनता है परमात्मा।
परमात्मा बनने के हेतु ही, 'कनकनन्दी' ध्याता स्व आत्मा।। (4)

नन्दौड़, दिनांक 06.09.2015, प्रातः 9.15

समता साधक गुरु ही अद्वितीय

-आ. कनकनन्दी

(चाल : फूलों का तारों का....., आधा है चन्द्रमा.....)

सारी वसुधा में गुरु अद्वितीय है, समता साधक साधु अलौकिक है।
राग द्वेष मोह दूर करते है, संकीण कट्टरता नहीं धरते।। (ध्रुव)
भेद-भाव पक्ष-पात नहीं करते, धनी-गरीब में न भेद करते...ला-ला-ला
समता शांति की आराधना करते, विश्व शांति-मैत्री की भावना भाते।
अपेक्षा-उपेक्षा प्रतिक्षा रिक्त, संकल्प-विकल्प-संक्लेश रिक्त।।...(1)
अहंकार-ममकार-द्वंद्व रहित, ईर्ष्या-घृणा-तृष्णा कामना रिक्त...ला-ला-ला
आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र युक्त, क्षमा सहिष्णुता संतोष युक्त।
सादा जीवन उच्च विचार युक्त, पावन उदार व धैर्य सहित।। (2)
ख्याति पूजा लाभ सत्ता रहित, हिंसा झूठ चोरी संग्रह रहित...ला-ला-ला
फैशन व्यसन कुशील रहित, निस्पृह निराडम्बर ढोंग रहित।
ध्यान-अध्ययन व मनन चिंतन, आत्म शोध-बोध-स्मरण रमण।
आत्मा की प्राप्ति ही है परम ध्येय, ऐसी गुरुत्त्व प्राप्ति 'कनक' (का) ध्येय।। (3)

नन्दौड़, दिनांक 05.09.2015, रात्रि 10.5

संदर्भ-

शुद्धात्मा-ध्यान सूत्राणि

-आचार्य माघनन्दी विरचित

1. **रागद्वेषमोहरहितोऽहम्**-मैं राग, द्वेष मोह से रहित हूँ।
2. **क्रोधमानमायालोभरहितोऽहम्**-मैं क्रोध, मान, माया, लोभ से रहित हूँ।

3. **पञ्चेन्द्रियविषयव्यापारशून्योऽहम्**-मैं पञ्चेन्द्रिय विषय संबंधी व्यापार से रहित हूँ।
4. **मनोवचनकायक्रियारहितोऽहम्**-मैं मन, वचन, काय की क्रिया से रहित हूँ।
5. **द्रव्यकर्मभावकर्मनोकर्मरहितोऽहम्**-मैं द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म से रहित हूँ।
6. **ख्यातिपूजालाभादिविभावभावरहितोऽहम्**-मैं ख्याति (कीर्ति), पूजा, लाभ आदि विभाव-भावों से रहित हूँ।
7. **दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारहितोऽहम्**-मैं देखे हुए, सुने हुए, अनुभव किए हुए भोगों की आकांक्षा से रहित हूँ।
8. **निजनिरञ्जनस्वरूपोऽहम्**-मैं अपने निरञ्जन स्वरूप वाला हूँ।
9. **स्वशुद्धात्मसम्यग्श्रद्धानपरिणतोऽहम्**-मैं अपने शुद्ध आत्मा के सम्यक् श्रद्धान् में परिणत हूँ।
10. **भेदज्ञानानुष्ठानपरिणतोऽहम्**-मैं भेदज्ञान के अनुष्ठान में परिणत हूँ।
11. **अभेदरत्नत्रयरूपोऽहम्**-मैं अभेद रत्नत्रय रूप हूँ।
12. **निर्विकल्पसमाधिसञ्जातोऽहम्**-मैं निर्विकल्प समाधि वाला हूँ।
13. **वीतरागसहजानन्दस्वरूपोऽहम्**-मैं वीतराग सहज आनंद स्वरूप हूँ।
14. **अत्यानन्दरूपोऽहम्**-मैं अति आनंद रूप हूँ।
15. **स्वसम्वेदनज्ञानामृतभरितोऽहम्**-मैं स्वसम्वेदन ज्ञान रूपी अमृत से पूर्ण हूँ।
16. **ज्ञायकस्वभावोऽहम्**-मैं एक ज्ञायक स्वभाव वाला हूँ।
17. **सहजशुद्धपारिणामिकस्वभावरूपोऽहम्**-मैं सहज शुद्ध एक पारिणामिक स्वभाव रूप हूँ।
18. **सहजशुद्धज्ञानानन्दैकस्वभावोऽहम्**-मैं सहज शुद्ध एक ज्ञानानन्द स्वभाव रूप हूँ।
19. **महाचलननिर्भरानन्दरूपोऽहम्**-मैं नित्य और पूर्ण आनंद रूप हूँ
20. **चिन्मात्रमूर्तिस्वरूपोऽहम्**-मैं चिन्मात्र मूर्ति स्वरूप हूँ।
21. **चैतन्यरत्नाकरस्वरूपोऽहम्**-चैतन्य रूपी समुद्र मेरा स्वरूप है।
22. **चैतन्यामरद्रुमस्वरूपोऽहम्**-चैतन्य रूपी कल्पवृक्ष मेरा स्वरूप है।
23. **चैतन्यामृतआहारस्वरूपोऽहम्**-मैं चैतन्य रूपी अमृत का आस्वाद लेने वाला हूँ।
24. **ज्ञानपुञ्जस्वरूपोऽहम्**-मैं ज्ञान पुञ्ज स्वरूप हूँ।

25. **ज्ञानामृतप्रवाहस्वरूपोऽहम्**–ज्ञानरूपी अमृत का प्रवाह मेरा स्वरूप है।
26. **चैतन्यरसरसायनस्वरूपोऽहम्**–मैं चैतन्य रस रूप रसायन (औषध) हूँ।
27. **चैतन्यचिन्मयस्वरूपोऽहम्**–मैं चैतन्य चिन्मय स्वरूप हूँ।
28. **चैतन्यकल्याणवृक्षस्वरूपोऽहम्**–मैं चैतन्य रूप कल्याण वृक्ष हूँ।
29. **ज्ञानज्योतिःस्वरूपोऽहम्**–मैं ज्ञान-ज्योति स्वरूप हूँ।
30. **ज्ञानार्णवस्वरूपोऽहम्**–मैं ज्ञानरूपी समुद्र हूँ।
31. **निरुपमनिर्लेपस्वरूपोऽहम्**–मैं उपमा-रहित, कर्मलेप-रहित हूँ।
32. **निरवद्यस्वरूपोऽहम्**–मैं निर्दोष स्वरूप हूँ।
33. **शुद्धचिन्मात्रस्वरूपोऽहम्**–मैं शुद्ध चिन्मात्र स्वरूप हूँ।
34. **अनन्तज्ञानस्वरूपोऽहम्**–मैं अनंतज्ञान स्वरूप हूँ।
35. **अनन्तदर्शनस्वरूपोऽहम्**–मैं अनंत दर्शन स्वरूप हूँ।
36. **अनन्तवीर्यस्वरूपोऽहम्**–मैं अनंत वीर्य स्वरूप हूँ।
37. **अनन्तसुखस्वरूपोऽहम्**–मैं अनंत सुख स्वरूप हूँ।
38. **सहजानन्दस्वरूपोऽहम्**–मैं स्वाभाविक आनंद रूप हूँ।
39. **परमानन्दस्वरूपोऽहम्**–मैं परम आनंद स्वरूप हूँ
40. **परमज्ञानानन्दस्वरूपोऽहम्**–मैं परम ज्ञान रूप आनंद वाला हूँ।
41. **सदानन्दस्वरूपोऽहम्**–मैं सदा आनंद स्वरूप हूँ।
42. **चिदानन्दस्वरूपोऽहम्**–मैं चिदानंद स्वरूप हूँ।
43. **निजानन्दस्वरूपोऽहम्**–मैं निजानंद स्वरूप हूँ।
44. **सहजसुखानन्दस्वरूपोऽहम्**–मैं स्वाभाविक सुख रूप आनंद वाला हूँ।
45. **नित्यानन्दस्वरूपोऽहम्**–मैं नित्य आनंद स्वरूप हूँ।
46. **शुद्धात्मस्वरूपोऽहम्**–मैं शुद्ध आत्मा रूप हूँ।
47. **परमज्योतिःस्वरूपोऽहम्**–मैं परमज्योति स्वरूप हूँ।
48. **स्वात्मोपलब्धिस्वरूपोऽहम्**–मैं स्वात्म उपलब्धि रूप हूँ।
49. **शुद्धात्मसंवित्तिस्वरूपोऽहम्**–मैं शुद्धात्म ज्ञान रूप हूँ।
50. **भूतार्थस्वरूपोऽहम्**–मैं यथार्थ स्वरूप हूँ।
51. **परमार्थस्वरूपोऽहम्**–मैं परमार्थ स्वरूप हूँ।
52. **समयसारसमूहस्वरूपोऽहम्**–मैं समयसार (शुद्ध आत्मा) समूह रूप हूँ।
53. **अध्यात्मसारस्वरूपोऽहम्**–मैं अध्यात्म-सार स्वरूप हूँ।
54. **परममंगलस्वरूपोऽहम्**–मैं परम मंगल स्वरूप हूँ।

55. **परमोत्तमस्वरूपोऽहम्**-मैं परम उत्तम स्वरूप हूँ।
56. **सकलकर्मक्षयकारणस्वरूपोऽहम्**-मैं सर्व कर्म क्षय का कारण स्वरूप हूँ।
57. **परमाद्वैतस्वरूपोऽहम्**-मैं परम अद्वैत (अभिन्न एक) स्वरूप हूँ।
58. **शुद्धोपयोगस्वरूपोऽहम्**-मैं शुद्ध उपयोग स्वरूप हूँ।
59. **निश्चयषडावश्यकस्वरूपोऽहम्**-मैं निश्चय छः आवश्यक रूप हूँ।
60. **परमसमाधिस्वरूपोऽहम्**-मैं परम समाधि स्वरूप हूँ।
61. **परमस्वास्थ्यस्वरूपोऽहम्**-मैं परम स्वास्थ्य (आत्मलीनता) स्वरूप हूँ।
62. **परमस्वाध्यायस्वरूपोऽहम्**-मैं परम स्वाध्याय (आत्मावलोकन) रूप हूँ।
63. **परमभेदज्ञानस्वरूपोऽहम्**-मैं परम भेदज्ञान स्वरूप हूँ।
64. **परमसम्वेदनस्वरूपोऽहम्**-मैं उत्कृष्ट ज्ञान स्वरूप हूँ।
65. **परमसमरसीभावस्वरूपोऽहम्**-मैं उत्कृष्ट समता रूप हूँ।
66. **केवलज्ञानस्वरूपोऽहम्**-मैं केवलज्ञान स्वरूप हूँ।
67. **केवलदर्शनस्वरूपोऽहम्**-मैं केवलदर्शन स्वरूप हूँ।
68. **अनन्तवीर्यस्वरूपोऽहम्**-मैं अनंत वीर्य स्वरूप हूँ।
69. **परमसूक्ष्मस्वरूपोऽहम्**-मैं परम सूक्ष्म स्वरूप हूँ।
70. **अवगाहनस्वरूपोऽहम्**-मैं अवगाहन स्वरूप हूँ।
71. **अगुरुलघुस्वरूपोऽहम्**-मैं अगुरुलघु स्वरूप हूँ।
72. **अव्याबाधस्वरूपोऽहम्**-मैं अव्याबाध स्वरूप हूँ।
73. **अष्टविधकर्मरहितोऽहम्**-मैं आठ कर्मों से रहित हूँ।
74. **निरञ्जनस्वरूपोऽहम्**-मैं निरञ्जन स्वरूप हूँ।
75. **नित्योर्हम्**-मैं नित्य हूँ।
76. **अष्टगुणसहितोऽहम्**-मैं अष्ट गुण सहित हूँ।
77. **कृतकृत्योऽहम्**-मैं कृतकृत्य हूँ।
78. **लोकाग्रनिवास्योऽहम्**-मैं लोकाग्र निवासी हूँ।
79. **अनुपमोऽहम्**-मैं अनुपम हूँ।
80. **अचिन्त्योऽहम्**-मैं अचिन्त्य हूँ।
81. **अतर्क्योऽहम्**-मैं अतर्क्य (तर्क करने योग्य नहीं) हूँ।
82. **प्रमेहस्वरूपोऽहम्**-मैं प्रमेय (प्रमाण का विषय) रूप हूँ।
83. **अतिशयस्वरूपोऽहम्**-मैं अतिशय (असामान्य) स्वरूप हूँ।
84. **अक्षयस्वरूपोऽहम्**-मैं अक्षय स्वरूप हूँ।

85. **शाश्वतोऽहम्**-मैं शाश्वत (नित्य) हूँ।
86. **शुद्धस्वरूपोऽहम्**-मैं शुद्ध स्वरूप हूँ।
87. **सिद्धस्वरूपोऽहम्**-मैं सिद्ध स्वरूप हूँ।
88. **सत्तात्मकसिद्धस्वरूपोऽहम्**-मैं सत्तात्मक सिद्ध स्वरूप हूँ।
89. **अनुभवात्मकसिद्धस्वरूपोऽहम्**-मैं अनुभवात्मक सिद्ध स्वरूप हूँ।
90. **सोऽहम्, शुद्धोऽहम्**-जैसे सिद्ध है वैसा मैं शुद्ध हूँ।
91. **चित्कलास्वरूपोऽहम्**-मैं चित् कला स्वरूप हूँ।
92. **चैतन्यपुञ्जस्वरूपोऽहम्**-मैं चैतन्य पुञ्ज स्वरूप हूँ।
93. **सदानन्दस्वरूपोऽहम्**-मैं सदानंद स्वरूप हूँ।
94. **परमशरण्योऽहम्**-मैं परम शरण रूप हूँ।
95. **स्वयंभूऽहम्**-मैं स्वयंम्-भू हूँ।
96. **अतिशयातिशयातीत-अमूर्तानन्दसुखस्वरूपोऽहम्**-मैं अतिशयों के अतिशय से अतीत, अमूर्त अनंत सुख स्वरूप हूँ।
97. **अनन्तज्ञानस्वरूपोऽहम्**-मैं अनंत ज्ञान स्वरूप हूँ।
98. **अनन्तदर्शनस्वरूपोऽहम्**-मैं अनंत दर्शन स्वरूप हूँ।
99. **अनन्तवीर्यस्वरूपोऽहम्**-मैं अनंत वीर्य स्वरूप हूँ।
100. **अनन्तसुखस्वरूपोऽहम्**-मैं अनंत सुख स्वरूप हूँ।
101. **अनन्तगुणस्वरूपोऽहम्**-मैं अनंत गुण स्वरूप हूँ।
102. **अनन्तशक्तिस्वरूपोऽहम्**-मैं अनंत शक्ति स्वरूप हूँ।
103. **अनन्तानन्तस्वरूपोऽहम्**-मैं अनंतानंत स्वरूप हूँ।
104. **निर्वेदस्वरूपोऽहम्**-मैं वेद रहित स्वरूप हूँ।
105. **निर्मोहस्वरूपोऽहम्**-मैं निर्मोह स्वरूप हूँ।
106. **निरामयस्वरूपोऽहम्**-मैं निरामय (रोग रहित) स्वरूप हूँ।
107. **निरायुधस्वरूपोऽहम्**-मैं आयुध (अस्त्र-शस्त्र) रहित हूँ।
108. **निर्मायास्वरूपोऽहम्**-मैं माया रहित हूँ।
109. **निर्गोत्रस्वरूपोऽहम्**-मैं गोत्र रहित हूँ।
110. **निर्विघ्नस्वरूपोऽहम्**-मैं विघ्न रहित हूँ।
111. **निर्गतिस्वरूपोऽहम्**-मैं गति रहित हूँ।
112. **निरिन्द्रियस्वरूपोऽहम्**-मैं इन्द्रिय रहित हूँ।
113. **निष्कषायस्वरूपोऽहम्**-मैं कषाय रहित हूँ।

114. **निर्योगस्वरूपोऽहम्**-मैं योग रहित हूँ।
115. **निजशुद्धात्मस्मरणनिश्चयसिद्धोऽहम्**-मैं अपनी शुद्ध आत्मा के स्मरण रूप निश्चय सिद्ध हूँ।
116. **परमज्योतिःस्वरूपोऽहम्**-मैं परम ज्योति स्वरूप हूँ।
117. **निजनिरञ्जनस्वरूपोऽहम्**-मैं अपने निरञ्जन स्वरूप वाला हूँ।
118. **चिन्मयस्वरूपोऽहम्**-मैं चिन्मय स्वरूप हूँ।
119. **ज्ञानानन्दस्वरूपोऽहम्**-मैं ज्ञानानंद स्वरूपी हूँ।
120. **सोऽहं, शुद्धोऽहं, बुद्धोऽहंम्**-जो वह है, वही मैं हूँ, मैं शुद्ध हूँ, मैं बुद्ध हूँ।
121. **परमानन्दपरिणामपरिणतिस्वरूपोऽहम्**-मैं परमानंद परिणाम की परिणति रूप हूँ।
122. **सहजानन्दपरिणामपरिणतिस्वरूपोऽहम्**-मैं सहजानंद परिणाम की परिणति रूप हूँ।
123. **नित्यानन्दपरिणामपरिणतिस्वरूपोऽहम्**-मैं नित्यानंद परिणाम की परिणति स्वरूप हूँ।
124. **निर्विकाररूपपरिणामपरिणतोऽहम्**-मैं निर्विकार रूप परिणाम परिणति हूँ।
125. **अनन्तसुखसम्पन्नोऽहम्**-मैं अनंत सुख सम्पन्न हूँ।
126. **ज्ञानामृतपयोधररूपोऽहम्**-मैं ज्ञानामृत पयोधर (मेघ) रूप हूँ।
127. **अनन्तवीर्यसम्पन्नोऽहम्**-मैं अनन्त वीर्य सम्पन्न हूँ।
128. **अनन्तदर्शनसम्पन्नोऽहम्**-मैं अनंत दर्शन सम्पन्न हूँ।
129. **निर्विकारपरमानन्दपरिणतोऽहम्**-मैं निर्विकार परमानन्द परिणति हूँ।
130. **निराबाधसुखस्वरूपोऽहम्**-मैं निराबाध सुख स्वरूप हूँ।
131. **सर्वसंगविवर्जितपरिणामपरिणतोऽहम्**-मैं सर्व परिग्रह रहित परिणाम से परिणत हूँ।
132. **परमानन्दरसभरितपरिणामपरिणतोऽहम्**-मैं परमानंद रस से पूर्ण परिणाम में परिणत हूँ।
133. **शुद्धचैतन्यलक्षणसिद्धस्वरूपोऽहम्**-मैं शुद्ध चैतन्य लक्षण सिद्ध स्वरूप हूँ।
134. **निर्विकल्पध्यानपरिणतोऽहम्**-मैं निर्विकल्प ध्यान में परिणत हूँ।
135. **ज्ञानसुधारसभोक्तृस्वरूपोऽहम्**-मैं ज्ञानरूपी अमृत को भोगने वाला हूँ।
136. **वीतरागानन्दपरिणामपरिणतोऽहम्**-मैं वीतराग आनंद परिणाम हूँ।
137. **परमानन्दपरिणामपरिणतोऽहम्**-मैं परमानंद परिणाम से परिणत हूँ।

138. **शान्तिरसरूपपरिणामपरिणतोऽहम्**-मैं शांति रस रूप परिणाम से परिणत हूँ।
139. **परमानन्दरसंभरपरिणतोऽहम्**-मैं परमानन्द रस से परिणत हूँ।
140. **शुद्धदर्शनानन्दपरिणामपरिणतोऽहम्**-मैं शुद्ध दर्शनानंद परिणाम से परिणत हूँ।
141. **शुद्धज्ञानानन्दपरिणामपरिणतोऽहम्**-मैं शुद्ध ज्ञानानंद परिणाम से परिणत हूँ।
142. **क्रोधादिविकल्पजालतरंगरहितोऽहम्**-मैं क्रोध आदि विकल्प समूह रूपी लहर से रहित हूँ।
143. **जगत्त्रयकालत्रयवर्तीवस्तुज्ञानस्वरूपोऽहम्**-तीन लोक, तीन काल के पदार्थों का ज्ञान मेरा स्वरूप है।
144. **जन्मजरामरणरहितनित्यस्वरूपोऽहम्**-मैं जन्म, जरा, मरण रहित नित्य स्वरूप हूँ।
145. **चतुर्गतिगमनरहितनित्यस्वरूपोऽहम्**-मैं चतुर्गति गमन रहित नित्य स्वरूप हूँ।
146. **शिवस्वरूपोऽहम्, शङ्करस्वरूपोऽहम्, परब्रह्मस्वरूपोऽहम्**-मैं मोक्ष स्वरूप हूँ, कल्याण करने वाला मेरा स्वरूप है, मैं उत्कृष्ट आत्मा हूँ।
147. **परमविष्णुस्वरूपोऽहम्**-मैं ज्ञान से सर्व व्यापक स्वरूप वाला हूँ।
148. **जितक्रोधरूपपरिणामपरिणतोऽहम्**-मैं क्रोध विजय रूप परिणाम से परिणत हूँ।
149. **जितमानरूपपरिणामपरिणतोऽहम्**-मैं मान विजय रूप परिणाम से परिणत हूँ।
150. **जितकामरूपपरिणामपरिणतोऽहम्**-मैं काम विजय रूप परिणाम से परिणत हूँ।
151. **जितमोहरूपपरिणामपरिणतोऽहम्**-मैं मोह विजय रूप परिणाम से परिणत हूँ।

सुख संबंधी शोधपूर्ण कविता

सुखी होने के धार्मिक-कर्म सैद्धांतिक-वैज्ञानिक कारण (हैप्पी हार्मोन)

-वैज्ञानिक आचार्य कनकनन्दी

(चाल : सायोनारा....., तुम दिल की.....)

सुखी होने के कारणों को जानो...अंतरंग-बहिरंग स्वरूप मानो...
अंतरंग कारणों को प्रमुख मानो...बहिरंग कारणों को निमित्त जानो...(स्थायी)...

जीवों का स्वभाव तो अनंत सुख...कर्म के बंधनों से मिलता दुःख...
कर्मक्षय से मिले अनंत सुख...क्षयोपशम से मिले आंशिक सुख...

बयालीस (42) सातादि पुण्योदय के कारण...सुख हेतु मिले अन्तः बाह्य कारण...
समता-शांति-पवित्रादि अंतरंग कारण...दान-दया-सेवादि भी अंतरंग कारण...(1)...

विज्ञान भी शोध रहा निम्न कारण...पचास प्रतिशत (50%) सुख हेतु जींस कारण...
जिससे विभिन्न हार्मोंस का होता स्राव...जिससे होता है सुख का अनुभव...

कार्य की सफलता या प्रशंसा के कारण...देह में स्राव होता हार्मोन 'डोपामिन'...
जिससे सुख का भी अनुभव होता...'चिड़चिड़ापन' भी दूर हो जाता...(2)...

निःस्वार्थ सेवा से स्राव (होता) 'ऑक्सीटोसिन'...जिससे सुख का होता अनुभवन...
होती संतुष्टि व सुधरता है संबंध...तनाव दूर होता बढ़ता है आनंद...

'सेरोटोनिन' स्राव से मूड उत्तम होता...क्रोध का भाव भी क्षीण है होता...
प्रसन्नता से बढ़ता है यह हार्मोन/(सेरोटोनिन)...तथाहि भ्रमण व नारियल-केला भक्षण...(3)...

'प्रोजेस्टेरोन' 'एस्ट्रोजन' संतुलित होता...तब मूड का भी संतुलन होता...
आत्मविश्वास बढ़े-क्रोध होता है क्षीण...सात्विक जीवन से बढ़ते दोनों हार्मोन...

शांतिप्रद संगीत (श्रवण) व उत्तम प्रिय काम...व्यायाम प्राणायाम योगासन ध्यान...
सात्विक मधुर व स्निग्ध भोजन...उत्तम भाव-कार्य सुखी होने के कारण...(4)...

उत्तम भाव व कार्यों के कारण...पुण्य कर्मों का होता है बंधन...
आत्मविशुद्धि से मिलता आनंद...'कनकनन्दी' का लक्ष्य परम आनंद...(5)...

नन्दौड़, दिनांक 29.09.2015, रात्रि 12.25

उत्तरोत्तर दुर्लभ से दुर्लभतर व दुर्लभतम उपलब्धि
(स्व का विश्वास-ज्ञान-चारित्र ही दुर्लभ)

-आ. कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की धड़कन.....)
दुर्लभ से दुर्लभ है, जग में भद्रजन होना।

सज्जन होकर गुणग्राही बनकर, नैतिक जन होना।। (स्थायी)

इसी से भी दुर्लभ है अति दुर्लभ, तत्त्व रुचि होना।
श्रद्धापूर्वक आध्यात्मिक, गुरु से तत्त्व श्रवण करना।।

इसी से भी अति दुर्लभ है, तत्त्व ज्ञान का होना।
तत्त्व ज्ञान के सारभूत, स्व आत्म ज्ञान होना।। (1)

इसी से भी दुर्लभ होता है, आत्म-चिन्तन करना।
चिन्तन मनन वैराग्यपूर्वक, व्रती श्रावक होना।।

इसी से भी दुर्लभ होता है, ब्रह्मचारी व्रती होना।
उत्तरोत्तर दुर्लभ होता है, क्षुल्लक-ऐलक भी होना।। (2)

इसी से भी दुर्लभ होता है, श्रमण दीक्षा लेना।
ध्यान अध्ययन व मनन चिंतन से, मौन साधना करना।।

इसी से भी दुर्लभ से दुर्लभ, है निस्पृहधारी होना।
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि त्याग, आत्म साधना करना।। (3)

इसी से भी अति दुर्लभ है, समताधारी साधु होना।
ईर्ष्या द्वेष घृणा व काम तृष्णा, त्यागकर आत्म शांति पाना।।

दुर्लभ से अति दुर्लभ है, आत्म संवित्ति होना।
शुद्ध-बुद्ध व आनंदमय, स्वात्मा का अनुभव करना।। (4)

संकल्प-विकल्प व संक्लेश, त्यागकर आत्मानुभव करना।
अपेक्षा उपेक्षा प्रतीक्षा त्यागकर, 'कनक' स्वलीन होना।।

दुर्लभ से अति दुर्लभ है, क्षपक श्रेणी चढ़ना।
चार घाती के नाश करके, केवलज्ञान को पाना।। (5)

योग निरोध से कर्म नष्टकर, निर्वाण पदवी पाना।
यह ही जीव की परम उपलब्धि, तीन लोक व तीन काल में।।

अन्य सभी उपलब्धि परम न होती, तीन लोक व तीन काल में।
जन्म-जरा-मृत्यु रहित, यह दशा सच्चिदानंदमय।। (6)

अनंतज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय, व अमूर्तिक मय।।

नन्दौड़, दिनांक 08.10.2015, रात्रि 9.37 व प्रातः 7.55

गीताञ्जली धारा का उद्गम-प्रस्त्रवण-प्रसार

(गीताञ्जली का इतिहास-सहयोगी व सदुपयोगी)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : गंगा तेरी धारा अमृत.....)

कविता/(गीत, गाना, पद्य, काव्य) तेरी अजस्त्र धारा...झर-झर बहती जाए...
सीपुर (2011) से प्रारम्भ/(उद्गम) होकर...अविरल बहती (ही) जाए...कविता...(ध्रुव)

चिर सञ्चित मेरी भावना...प्रगट हुई सीपुर (2011) से...
मेरी भावना/(उत्कण्ठा, कल्पना) पीड़ा-सम्वेदना...प्रस्त्रवण (हुई) तीर्थ क्षेत्र से...
प्रशांत-पावन-प्राकृतिक...स्वच्छ वातावरण से...काव्य...(1)...

इस क्षेत्र के जीर्णोद्धारक...गुरुभक्त नितिन भाई...
जिसके प्रेरक समता सागर...दिगम्बर श्रमण सूरी...
इसी क्षेत्र के वर्षायोग (2011) में...प्रस्त्रवण हुई काव्य धारा...पद्य...(2)...

इस धारा के भगीरथी हैं...श्रमण श्री सुविज्ञसागर...
सहयोगी क्षमाश्री आर्यिका...आध्यात्मनन्दी शिष्यवर...
ब्रह्मचारिणी फाल्गुनी-विधि का...सहयोग भी भरपूर...गीत...(3)...

साध्वी सुवत्सल-सुनीति-सुनिधि...सुवीक्ष ब्रह्मचारी सोहन...
सूरी गुप्तिनन्दी-सुयशगुप्त...चन्द्रगुप्त श्रमण...
साध्वी आस्थाश्री का भी योगदान...है मम शिष्यगण...पद्य...(4)...

शिष्य पद्मनन्दी (सूरी) के अनुरोध से...बन रही सरल कविता...
कठिन कविता के नीचे...दे रहा हूँ हिन्दी टीका...
वैज्ञानिक अग्रवाल के कारण...गाथा/(श्लोक) की कर रहा हूँ कविता...(5)...

प्रकाशन भी कर रहे हैं...स्वेच्छा से भक्तगण...
देश-विदेश के जैन-अजैन...भक्त-शिष्यगण...
लाभान्वित भी हो रहे हैं...आबाल-वृद्धजन...काव्य...(6)...

स्वाध्याय-चर्चा-प्रवचन में...हो रहा है प्रयोग/(उपयोग)...
ज्ञान-विज्ञान-शिक्षा-संस्कृति से...पा रहे हैं आनंद...
इन कारणों से 'कनकनन्दी' को...मिले है ज्ञानानंद...कविता...(7)...

नन्दौड़, दिनांक 09.10.2015, रात्रि 11.45

आध्यात्मिक भाव-व्यवहार बिना मनुष्य पशु से भी नीच

(आध्यात्मिक 'मैं' के श्रद्धान-अनुभव बिना जीव अधार्मिक)

वैश्विक धरा में जाज्ज्वल्यमान आध्यात्मिक विभूति संत वैज्ञानिक श्रमणाचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुदेव ससंघ के निस्पृह-निराडम्बर गतिमान चातुर्मास स्थल ग्राम नन्दौड़ (राज.) में मेवाड़ अञ्चल के प्रायः 6-7 गाँवों से पधारे दर्शनार्थियों को संबोधित करते हुए आचार्यश्री ने मनुष्य जन्म की दुर्लभता का बोध कराते हुए कहा कि श्रेष्ठ कौन? जो आत्म कल्याण करता है। आत्म-विद्या के कारण हम विश्व गुरु रहे, किन्तु अभी हमारा भारत सबसे पतित देश है, इसका कारण आध्यात्मिक 'मैं' को न जानने से आज भारत भ्रष्टतम देश बना हुआ है। हमारा समस्त तंत्र अर्थात् धर्म-शिक्षा-राजनीति-संविधान-कानून विषमता व विकृति से सराबोर है। भौतिकवादी पाश्चात्य विदेशी जन बुद्धि-संपत्ति को अधिक महत्त्व न देते हुए संवेदनशील नैतिक से लेकर आध्यात्मिक विचारों को अधिक प्रधानता देते हैं।

गुरुदेव ने कहा जो आत्मा को नहीं जानता वह सबसे ही अधम है। आध्यात्मिक भाव-व्यवहार के बिना मनुष्य पशु से भी नीच है, क्रूरतम निकृष्ट प्राणी है, यह विषय आगम से लेकर आधुनिक विज्ञान भी सिद्ध कर चुका है। जो अपने स्वभाव रूप समता-सुख-शांति से विपरीत भाव-व्यवहार करते है वे ही निश्चय से आत्महंता हैं। अतः हमें शिक्षा-धर्म-धन व आधुनिकता की विकृतियों से बचते हुए सत्य आत्म द्रव्य तत्त्व को जानना-मानना ही हितकर है। मेवाड़-बागड़ की संस्कृति यहाँ के पहाड़ों से सुरक्षित है, यहाँ पर बुद्धिलब्धि (I.Q.) व धन विशेष न होते हुए भी यहाँ के जन-गण-मन हृदयवान् (E.Q.) हैं। अतः इस उपलब्धि व गुण को जानकर आप सत्य-तथ्य पूर्ण आध्यात्मिक भाव-व्यवहार से प्रगतिशील व सुखी बनें, ऐसा भावभीना आशीर्वाद व शुभाकांक्षा पूज्यश्री ने प्रदान किये। इस अवसर पर गुरुदेव के वैज्ञानिक शिष्य डॉ. एस.एल. गोदावत ने गुरुदेव के व्यक्तित्व-कृतित्व की अलौकिकता व अद्वितीयता के प्रति अपनी शुभ भावना व श्रद्धा व्यक्त की। चातुर्मासकर्त्ता श्री प्रवीणचन्द्र जी शाह ने भी इस चातुर्मास के शांतिपूर्ण निराडम्बर स्वरूप की उपलब्धि से अत्यंत प्रसन्नता व्यक्त की।

शुभाकांक्षासह-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर